श्री गणेशाय नमः

श्री जानकीवल्लभो विजयतेतराम्

देवराहा प्रसाद

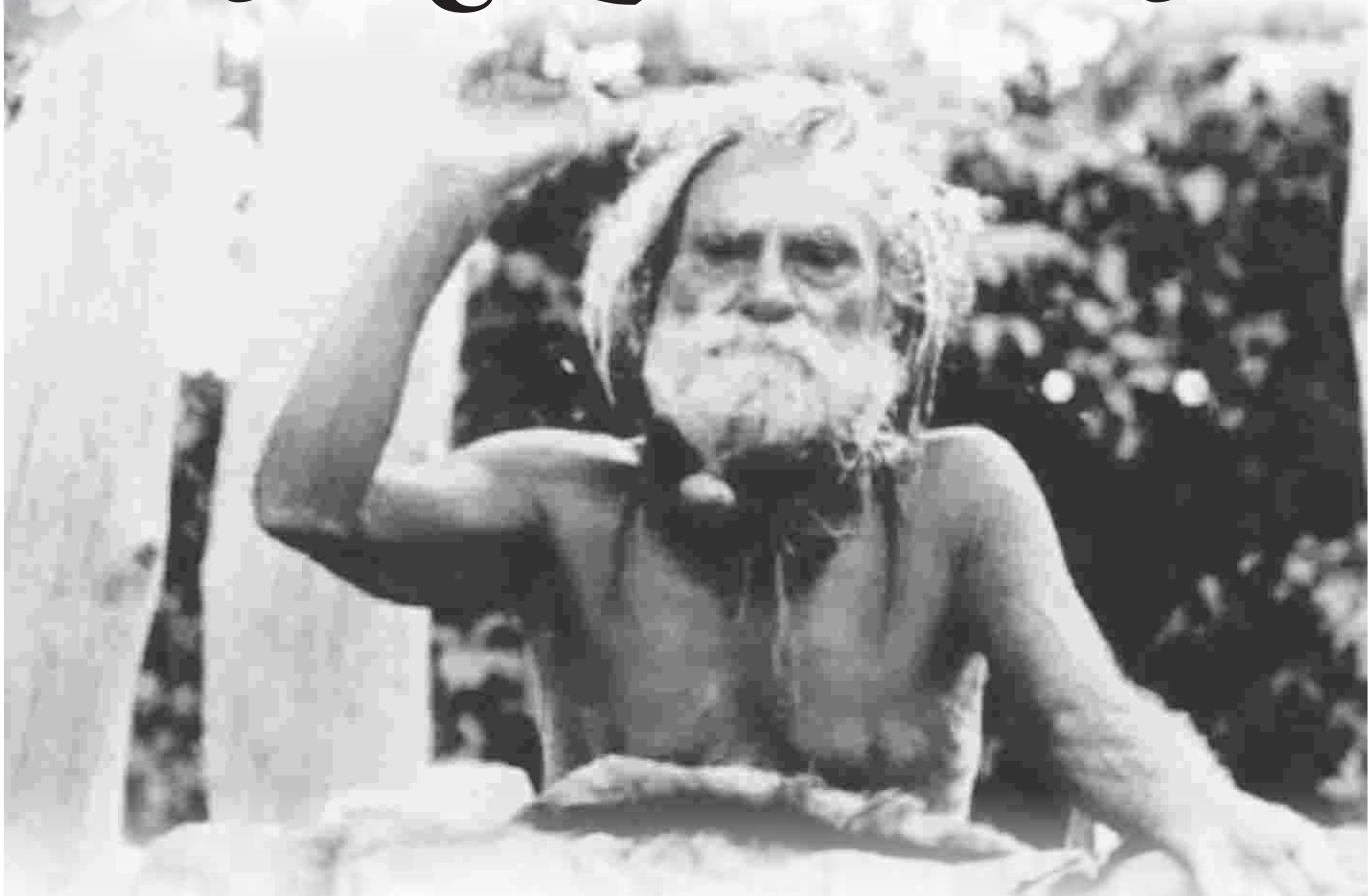

हे वीतराग! शत्-शत् प्रणाम,
हे योगिराज! शत्-शत् प्रणाम।
हे ब्रह्मनिष्ठ! शत्-शत् प्रणाम,
हे देवराह! शत्-शत् प्रणाम।।

श्रीमद् चरणकिङ्कर
—'राम दास'

• प्रकाशक/स्वामी/मुद्रक •

राम दास

• संस्करण •

अप्रैल–तृतीय-2020

• सहयोग राशि •

50/- (पचास रुपये मात्र)

• संरक्षक •

कुँवर श्री रघुराज प्रताप सिंह

• सम्पादक •

राम दास

• संशोधक •

डॉ. अरुण कुमार त्रिपाठी

• परामर्शदात्री समिति •

आचार्य सियाराम शास्त्री, श्री फूलचन्द्र दुबे, श्री मनोज मित्तल,
श्री विजय कुमार, डॉ. हरेन्द्र मिश्र

• मुद्रण •

दि इलाहाबाद ब्लॉक वर्क्स प्रा. लि.
329/255 चक, जीरो रोड, प्रयागराज
दूरभाष– 0532-2564543

• **सर्वाधिकार सुरक्षित–राम दास**

संपादन–संचालन पूर्णतः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक राम दास की ओर से ''दि इलाहाबाद ब्लाक वर्क्स प्रा. लि. 329/255 चक जीरो रोड, प्रयागराज-211003'' उत्तर प्रदेश द्वारा मुद्रित एवं श्री देवरहा बाबा मंच न्यास कोहना, झूंसी-211019 उत्तर प्रदेश, प्रयागराज से प्रकाशित

सम्पर्क सूत्र

श्री देवरहा बाबा मंच

शास्त्री पुल के नीचे, झूँसी, गंगा तट, प्रयागराज
पिन कोड — 211019
E-mail : sridevrahababamanch@gmail.com

सुधीजन हमें अपने लेख उक्त ई-मेल के पते पर भेज सकते हैं।
website : devrahababamanch.org

अनुक्रमणिका

संपादकीय 4

ब्रह्मर्षि-योगिराज-देवरहा-स्तुति-शतकम् 5

'ब्रह्म वेत्ता योगी सम्राट पूज्य देवराहा बाबा की वाणी सत्य' 6

गोपी चीरहरण का सामाजिक और आध्यात्मिक पक्ष 9

मानसवर्णित समाज के शोचनीय व्यक्ति-साम्प्रतिक सन्दर्भ 12

परतंत्र, स्वतंत्र तथा आजाद 16

आतो वाता ओधषमः 18

सियाराम मय सब जग जानी 19

रामायण काल में स्त्री शिक्षा 23

भारतीय संस्कृति और स्वामी विवेकानन्द 25

जय गौ माता 26

रम्या-रामायणी-कथा 27

कोरोना वायरस से रक्षक सनातन धर्म 29

श्री राम के रहने के स्थान में भारतीय जीवन पद्धति की झांकी 31

सम्पादकीय

भारतवर्ष ऋषि मुनियों, सिद्धों, साधकों तथा योगियों का देश है। यह वह देश है जहाँ त्याग में सुख की अनुभूति की जाती है। पाश्चात्य देशों में इसके विपरीत 'भोग' में सुख की अनुभूति होने की मान्यता है। भारतीय संस्कृति में प्रसिद्ध है कि—**''न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः''** अर्थात् मनुष्य को कभी धन से तृप्ति सम्भव नहीं है। धन जीवन के लिए आवश्यक है, परन्तु यह धन धर्मसम्मत होना चाहिए। धन और धर्म दोनों सृष्टि के आधार हैं। धर्म का एक पर्याय आचार भी है जिसे पूज्य बाबा योगी सम्राट् देवरहा बाबा कहा करते थे, बच्चा, **''आचारः परमो धर्मः''** अर्थात् आचार ही परम धर्म है। आचार से ही विचार और विचार से ही व्यवहार बनता है।

आज पूरा विश्व कोरोना वायरस संक्रमण से जूझ रहा है। लगभग 50 लाख लोग पूरी दुनियाँ में इससे संक्रमित हैं तथा लगभग 3 लाख लोग काल के गाल में समा चुके हैं। आज इस समस्या का समाधान लोगों को नहीं मिल रहा है क्योंकि लोगों का आचरण अच्छा नहीं रह गया लोग देवरहा बाबा के इस मंत्र को भूल गये हैं। इसीलिए लोग भौतिकता की विकास की झूठी सीढ़ी चढ़ते हुए विनाश की तरफ जा रहे हैं, लोगों की वही स्थिति है कि जिस डाली पर बैठे हैं उसी को काट रहे हैं। क्योंकि वे पूंजीवादी व्यवस्था के अनुपालन में धन संग्रह के लिए अपने आचार को ही भूल गये हैं। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था पहले आर्थिक संसाधनों पर कब्जा जमाती है, बाद में राज्य पर। प्रकृति के संसाधनों पर कब्जा करने की मानसिकता ने पर्यावरण पर संकट खड़ा किया है। आज का कोरोना संकट भी इसी मानसिकता की उपज है। आज भारतीय संस्कृति का पूरे विश्व में अनुकरण किया जा रहा है। एक दूसरे के प्रति सम्मान एवं स्वागत के सूचक 'नमस्ते' से लेकर सूर्य नमस्कार, योग, प्राणायाम, यम, नियम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, शुचिता, सात्विक जीवन-शैली, प्रकृति-पर्यावरण का सम्मान आदि सनातन परम्पराओं को अपना कर विश्व समुदाय कोरोना जैसी महामारी से बच रहे हैं। आज कोरोना संकट जहाँ एक तरफ भारत के लिए प्रत्यक्ष रूप में चुनौती है, वहीं दूसरी तरफ परोक्ष रूप में एक अवसर भी। विश्व शांति, सद्भावना, विश्व बन्धुत्व, वसुधैव-कुटुम्बकम् आदि भारतीय उच्च मूल्यों के साथ-साथ भारत के प्राचीन आध्यात्मिक ज्ञान, योग, स्वस्थ, सादा एवं सकारात्मक जीवन प्रणाली आदि को पूरे देश में पुनः जीवित व स्थापित करने की तथा जगत कल्याण के लिए समग्र विश्व में विकसित करने की आवश्यकता है।

देवरहा प्रसाद का यह तृतीय अंक कोरोना के कारण आप लोगों की सेवा में कुछ विलम्ब से पहुँच रहा है। आप सभी सुधी पाठक एवं लेखक जन से अनुरोध है कि देवरहा बाबा के उपदेशों का पालन करते हुए, मास्क एवं सेनेटाइजर का प्रयोग करते हुए, सामाजिक दूरी बनाते हुए, रोग रहित रहें। यही मेरी बाबा से प्रार्थना है।

हो तन सुखी, हो मन सुखी, सुखी रहे ये समाज,
ऋषि और कृषि परम्परा, के ये ही उत्तम काज॥

चरण किंकर
रामदास

ब्रह्मर्षि-योगिराज-देवराहा-स्तुति-शतकम्

गत अङ्क से आगे—

अतो व्रजन्ति ये जना हि तीर्थराज संगमे,
ध्रुवं समाश्रयन्ति तेऽपि योगिराजसन्निधिम्।
विनैव योगिदर्शनं न पूर्णतां प्रयाति तत्,
इतीव निश्चितं मतं मिथो जनैर्विभाव्यते॥11॥

श्री महाराज के दर्शनों के इस प्रकार अद्भुत प्रभाव के कारण जो लोग तीर्थराज प्रयाग में जाते हैं, वे सभी अवश्य श्रीमहाराज के दर्शन भी करते हैं। मानो श्री महाराज के दर्शनों के बिना वे अपूर्ण ही रहते हैं। यह भावना सबमें विद्यमान रहती है।।11।।

न यत्र भेदबुद्धिरस्ति देशजातिसम्भवा,
न चाश्रमादिवर्णजातिवासना प्रदृश्यते।
मतान्धतां विहाय यत्र सर्व एव सज्जनाः,
व्रजन्ति ह्यात्मशान्तये कथन्न सेव्यतामसौ॥12॥

श्रीमहाराज के दर्शनोपरान्त लोगों में न तो देश और जाति आदि को लेकर बुद्धि भेद-भाव दिखायी देता है, न वर्ण और आश्रम आदि के कारण ही कुछ राग-द्वेषादि रह जाता है। वहाँ पर तो सब प्रकार के मत-वादों से दूर होकर सभी सज्जन आत्म-शान्ति प्राप्त करते हैं। वह महापुरुष अवश्य ही परम सेव्य हैं।।12।।

यथा समस्तजीवमात्रदेहरक्षणेरतः,
पितेव पालको विभुर्जनैः सदाविचिन्त्यते।
तथैव रक्षको गुरुः सदैव योऽवलम्ब्यते,
नताः स्म पादपद्मयोस्तमेव चेश्वरं हरिम्॥13॥

जैसे श्री भगवान् नारायण जीवमात्र की रक्षा पिता के समान करते हैं और लोग भी उन्हें पुकारते हैं, इसी प्रकार श्रीमहाराज को भी लोग पिता के ही समान मानकर ईश्वर भावना से सेवा करते हैं। हमारा भी उन्हें नमस्कार।।13।।

अथो कदापि गोचरो भवेदसौ सुपावने,
सुरादिवृन्दवन्दितेऽपि भानुजातटे शुभे।
ध्रुवं सुभक्तिपूरिते व्रजे व्रजेन्द्रनन्दनः,
स्वयं यथाविराबभौ तथा जनैः सुतक्यते॥14॥

और जब कभी ये महापुरुष यमुना तट पर सुरमुनिवन्दित वृन्दावन में विराजते हैं तो इस व्रजभूमि में भक्ति से पूर्ण लोग यही समझते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण ही पुनः प्रकट हो गये हैं।।14।।

यथा सुवेणुनादतोऽत्र चित्तवृत्तिकर्षकः,
तथामृतोऽपमैर्वचोभिरेष कर्षयन्मनः।
द्वितीयनन्दसूनुरेव योगिराडनुत्तमः,
समाश्रितोऽप्यसंख्यदिव्यसौख्यकांक्षिभिर्नरैः ॥15॥

जैसे भगवान् श्रीकृष्ण के वेणुवाद को सुनकर लोग उनकी ओर आकृष्ट होते थे, वैसे ही श्रीमहाराज की सुधामयी वाणी से भी लोगों के मन उनकी ओर आकृष्ट होते हैं और भगवद् बुद्धि से ही लोग अनन्त सुख की कामना से इनकी शरण में पहुँचते हैं।।15।।

—क्रमशः आगामी अङ्क में

‘ब्रह्म वेत्ता योगी सम्राट पूज्य देवराहा बाबा की वाणी सत्य’

डॉ. रामनरेश त्रिपाठी

परम पूज्य योगी सम्राट देवराहा बाबा की वाणी सत्य सिद्ध हुई। उन्होंने राम मंदिर के प्रकरण में कहा था ‘अयोध्या राम की है और रामजन्मभूमि पर राम का मंदिर बनकर रहेगा,

‘अयोध्या राम की है राम जन्मभूमि पर मंदिर बनेगा,

विश्व हिन्दू परिषद के अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्ष अशोक सिंहल, वर्तमान संघ प्रमुख मोहन भागवत सहित अनेक संत उनके दर्शन में जाया करते थे। वे जब जब मंदिर की चर्चा करते बाबा कहते बच्चा, ‘‘अयोध्या किसकी है? राम की न, तो फिर राम की जन्मभूमि पर उनका मंदिर बनकर रहेगा।’’बाबा ने यह भी भविष्य वाणी की थी कि ‘सारा गुम्बद’ ढहकर सरयू में चला जायेगा और फिर सर्व सम्मत से राम मंदिर का निर्माण होगा। बाबा मंदिर निर्माण के आधार स्तम्भ थे और हों भी क्यों न राम पर ही भारत की सम्पूर्ण संस्कृति, सनातन धर्म आधारित है। राम और रामायण यदि त्रेता युग के प्रवर्तक रहे हैं, तो द्वापर में कृष्ण और गीता के उपदेश सम्पूर्ण विश्व के लिये ज्ञान का सार बने। पूज्य देवराहा बाबा राम और कृष्ण की भक्ति उनके अनुकरण से कल्याण की कामना किया करते थे। योगी की दिव्य दृष्टि का परिणाम है ‘अयोध्या में राम मंदिर का निर्माण। 1990 में तो बाबा ने स्पष्ट रूप से राममंदिर निर्माण की घोषणा ही कर दी थी बाबा को यह सब कुछ दृष्टिगत होता था कि आने वाले समय में क्या होने वाला है? मुझसे तो बाबा अनेक बार अपने उपदेश में इस बात को दोहराते थे। वस्तुतः

‘यत प्राप्य प्रतिमां चक्षुः योगी पश्यन्ति सर्वतः

योगी को दिव्य चक्षु प्राप्त होती है, उनसे वह वर्तमान, भूत, भविष्य को भली भांति देखता रहता है। गीता में भी भगवान कृष्ण ने ‘दिव्य चक्षु की बात कही है। ‘दिव्यं ददामि मे चक्षुः।’ भगवान कृष्ण एक ओर जगद्गुरु थे तो दूसरी ओर एक महान योगी। वैसे तो ईश्वर के अवतार थे, परन्तु लौकिक जगत में उनकी इन लीलाओं का सर्वत्र वर्णन प्राप्त होता है।

बाबा अपने भक्तों को सैदव उपदेश दिया करते थे ‘‘प्यारे आत्मा राम को भजो राम को ईष्ट मानो जो अनिष्ट को नष्ट करें, वही ईष्ट है। राम का नाम जपते जपते सो जाओ। शब्द, रूप, रस, स्पर्श, गंध से बचो’’

बाबा प्रायः भक्तों को कहा करते थे ‘बच्चा आंखे बंद करो, सीताराम सीताराम का नाम लो, न होठ हिले न जिह्वा और जब मैं हरिः ॐ तत् सत् ’ बोलूँ तब आंखें खोल दो। भक्त के समक्ष भगवान राम की दिव्य आभा का ही प्रकाश हुआ करता था। प्राणियों में दुर्लभ मानव जीवन तो प्राप्त हो गया परन्तु लक्ष्य स्पष्ट नहीं होने के कारण समस्यायें उलझती, जाती हैं। हम जैसा चाहते हैं, हमारा शरीर वैसा नहीं रहता, परिवार नहीं रहता, समाज नहीं रहता। हर जगह हमारी हार होती है, हम चाहते हैं संसार में हमें सब प्रेम दें। आदर दें, हमें सुख मिले, पर हमारी बात नहीं चलती। हम जैसा चाहते हैं, वैसा नहीं होता। बहुत उलझने हैं। हमारा जोर नहीं चलता, शांति नहीं मिलती। प्रत्येक मानव की यही समस्या है, धन है, दौलत है, परिवार है, सब कुछ है, पर शांति नहीं है। इस शांति की प्राप्ति केवल राम के पास मिल सकती है, परमात्मा के सानिध्य में मिल सकती है। मनुष्य का पृथक कर्तव्य अपने को पहचानता है, दूसरा परमात्मा का स्मरण करना

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

यदि इस तथ्य को कोई भी व्यक्ति समझ ले तो वह अपने आपको पहचान लेगा। इसके लिये हमें वेद-शास्त्रों तथा सन्तों का अवलम्बन लेना पड़ेगा। पूज्य बाबा के उपदेशों का यही सार हुआ करता था।

(1) वेद ब्रह्म-तत्व का निरूपण करते हैं। सत्य, आत्मा बनाम परमात्मा की अनुभूति का दिग्दर्शन वेद का प्रतिपाद्य विषय है। सिद्धान्त वेदों में निश्चित किये गये हैं। भारतीय आध्यात्मिक वाङ्मय इसी आत्म-तत्व की व्याख्या अनेक रूपों में करने से सम्बद्ध है और वेद के मूल सिद्धान्त सत्य की खोज से जुड़े है। सब में एक ही परमात्मा व्याप्त-इसी सर्वात्मभाव की अनुभूति सत्य अथवा ज्ञान की उपलब्धि है।

(2) शास्त्र वेद के प्रतिपादित विषय आत्म-ज्ञान की अनुभूति के नियमों का विधान है। इन्हीं विधानों से आत्म-तत्व की प्राप्ति के जिज्ञासु साधकों पर लक्ष्य-प्राप्ति के लिए शासन होता है। शास्त्रानुकूल आचरण होने पर ही सुख आनन्द अथवा शान्ति की प्राप्ति होती है। शास्त्र जो कहें वे करणीय कार्य हैं-विधेय हैं, उन्हें करो। शास्त्र जिसे नहीं कहें वह निषिद्ध कार्य है-उसे मत करो। इन नियमों के विधान पर शासन करना शास्त्रों का काम है। इनका सीधा सम्बन्ध आचरण से है।

(3) सन्त वेद के प्रतिपादित विषय आत्म-ज्ञान एवं शास्त्र के विधान का दर्शन अथवा स्वानुभूति कराने में अपने संकल्प अथवा उपदेशादि प्रयत्नों से साधकों को साहाय्य प्रदान करते हैं और तदनुकूल आचरण की रहनी बना देते हैं। इससे आनन्द तथा शान्ति उपलब्ध हो जाती है।

महात्मा वस्तुतः करते क्या हैं? जीवन का रुख जो संसार की ओर है उसे परमात्मा की ओर-अन्दर की ओर-फेर देते हैं और स्वतः जीव तथा परमात्मा के बीच से अलग हो जाते हैं। इस प्रकार, कोई आचरण न रहने के कारण, जीव के सत्व एवं परमात्मा के सत्य का संग हो जाता है। सत्य का सत्य के साथ इसी संग को कहते हैं—सत्संग।

श्री महाराजजी की रहनी में वेद एवं शास्त्र समाए हुए दीखते हैं। उनके सर्वात्म-भाव में आत्मा अर्थात् ब्रह्म की सर्वत्र व्याप्ति का ही दिग्दर्शन होता है। उनकी असीम दिव्य दया से भक्तों पर अनायास शक्तिपात होता रहता है और सर्वात्म-भाव का दिव्य-दर्शन सद्यः स्वानुभूति में हो जाता है।

दयामृतं यस्य मनोरविन्दे वाचामृतं यस्य मुखारविन्दे।
दानामृतं यस्य करारविन्दे त्रिलोक वंद्यो नरोवरोऽसौ॥

दया, करुणा, क्षमा, माधुर्य, सनेह, सद्भावना, अहिंसा, सत्य आदि ज्योतिर्मय दिव्य गुणों से चमत्कृत-तत्वदर्शी महामनीषी युगावतार पूज्य श्री देवराहा बाबा सदैव शरणागत प्राणियों के कल्याण में तत्पर हैं। उनकी सुधामयी कृपा के महत्व को वाणी द्वारा पूर्ण रूप से प्रकट करना सर्वथा असम्भव है। सद्गुरुदेव की दया अपार है, इस कारण वाणी द्वारा जो कुछ कहा जाय, वह स्वल्प ही होगा। उनके हृदय-कमल से सतत करुणामृत झरता रहता है। जो श्रद्धालु शिष्य सद्गुरु की दया पर जितना अधिक विश्वास करता है उसे उतना ही प्रत्यक्ष लाभ मिलता है। वे अहैतुकी करुणावश जीवों के कल्याण में अहर्निश संलग्न रहते हैं। ऐसे महापुरुषों का किसी भी जीव के साथ किसी स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं रहता, इस विषय में भगवान् स्वयं कहते हैं—

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थ व्यपाश्रयः॥

-(गीता 3/18)

अर्थात्–उस महापुरुष का इस विश्व में न तो कर्म करने से कोई प्रयोजन रहता है, न कर्मों के न करने से ही। सम्पूर्ण प्राणियों में उसका किंचिन्मात्र भी स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं रहता; तो भी उसके द्वारा केवल लोकहितार्थ कर्म किये जाते हैं।

तुलसीदास जी ने भी कहा है—

हेतु रहित जग जुग उपकारी।
तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी।।
स्वारथ मीत सकल जग माहीं।
सपनेहु प्रभु परमारथ नाहीं।।

–(मानस 7/46/3)

अन्यत्र भी उन्होंने संकेत किया है—

करहु कृपा गुरुदेव की नाईं।

इस प्रकार गुरुदेव के समान अकारण कृपालु परम हितैषी इस संसार में दूसरा कोई नहीं हैं

पूज्य बाबा की अमृत वाणी का कोई अन्त नहीं है। वे एक युग पुरुष थे, युग दृष्टा तथा उनका अवतार ही मानव कल्याण के लिये था। वे आज भी हमारे बीच है। उनके दिव्य चक्षुओं से जगत का कल्याण हो रहा है। पूज्य बाबा को ब्रह्मलीन हुये 20 जून 2020 से 30 वर्ष हो गये फिर भी वे भक्तों के हृदय में विद्यमान है। उनकी कृपा दृष्टि उनका कल्याण कर रही है। पूज्य बाबा को कोटिशः नमन।

460/400, मालवीय नगर, इलाहाबाद।
मो. 9415235128

वाणी रसवती यस्य, यस्य श्रमवती क्रिया।
लक्ष्मीः दानवती यस्य, सफलं तस्य जीवनं।।

जिस मनुष्य की वाणी मीठी है, जिसका कार्य परिश्रम से परिपूर्ण है, जिसका धन दान करने में प्रयोग होता है, उसका जीवन सफल है।

सुंदरे किं न सुंदरम्

भगवती चरण

सारे वानर आश्वस्त हुए। जाम्बवान् के वचन पवनपुत्र हनुमान के मन पर पड़े मोह के आवरण को हटाने में सफल रहे। वानर-समूह में उत्साह की लहर दौड़ पड़ी। अंगद, नल, नील आदि सभी वानर प्रसन्न थे कि अब हनुमान उस महान कार्य को अवश्य सम्पादित करेंगे, जिसके लिए राजा सुग्रीव ने उन सब को भेजा था और जिसके पूर्ण ना हो पाने की स्थिति में उन सभी को दण्डित होने का भय था। हनुमान की गर्जना और समुद्र के ऊपर उनकी लम्बी छलांग के दृश्य ने उन सभी के हृदयों को हर्ष की नयी लहर से अनुप्राणित कर दिया था।

केसरी और अंजना के मानों सारे सत्कर्म जाग चुके थे- उनका पुत्र उस महान कार्य को करने जा रहा था जिसके लिए उसका जन्म हुआ था- रामकार्य- सीता की सुध लेने का कार्य, रावण की लंका खोज निकालने का कार्य, रावण को यह अहसास दिलाने का कार्य कि समुद्र के उस पार और सोने के परकोटे से घिरि लंका में भी वह सुरक्षित नहीं है, सीता के तन में प्राण और राम के प्राणों में नवजीवन फूंकने का वही महान कार्य जिसके लिए उसे अष्ट सिद्धियाँ और नव निधियाँ प्रदान की गयी थीं। महेंन्द्रगिरि को भूगर्भ में धंसा कर रूद्रावतार ने अपना अभियान प्रारम्भ कर दिया था। और इसी के साथ राम की कथा में उस काण्ड का प्रारम्भ भी हो चुका था जो नाम और चरित्र दोनों से सुंदर था।

हनुमान वायुदेवता के पुत्र है, वायु मार्ग से वायु की गति से गमन करते हैं। मार्ग में मैनाक, सुरसा आदि कोई भी उन्हें रोक नहीं पाता। हनुमान सागर पार कर जाते हैं। उस पार वे वन की शोभा देखते हैं। इतना मनोरम वन जिसकी वर्णना कवि के लिए भी परिश्रम का काम है। नाना प्रकार के फल और फूल के पेड शोभित हो रहे हैं। मधु के लोभी भ्रमरों के गुंजन से वातावरण गुंजायमान हो रहा है। चित्र विचित्र पक्षियों और मृगों के दल विचार रहे हैं। सुंदरकाण्ड की सुंदरता के विषय में इससे ज्यादा क्या कहा जाए कि इसमें वन भी अपनी भयंकरता को त्याग देते हैं, और सुंदर हो जाते हैं।

हनुमान नगर के दुर्ग को देखते हैं, और प्रवेश द्वार के समीप पहुंचते हैं। प्रवेशद्वार की रक्षिका लंकिनी पर आघात कर वह आभास करा देते है कि लंका में उनका प्रवास वीर रस के अतिरेक को प्राप्त करने वाला है। विभीषण की मदद से वह अशोक वाटिका तक पहुंच जाते है जहां सीता को रावण ने बंदी बना कर रखा है। सीता विरह की मूर्ति हैं। विप्रलम्भ की अंतिम दशा को प्राप्त करने के समीप ही हैं। शरीर जीर्ण हो चुका है, कुंतल जटाओं में बंधे हैं, नयन पैरों को एकटक देख रहे हैं, चारों ओर रावण के द्वारा नियुक्त राक्षसी परिचारिकांए त्रास देने हेतु विचर रही है, रावण भी बारम्बार आकर धमकियाँ देता रहता है, इस परिस्थिति में भी सीता के मन का भ्रमर राम के पदकमल में लीन है। सीता की विपत्ति देख कर हनुमान तो दुखी हो गए लेकिन आने वाली समस्त पीढ़ियां आभार में गदगद हो गयी, पातिव्रत्य धर्म का अनूठा और अप्रतिम उदाहरण सीता ने प्रस्तुत कर दिखाया। सीता तन और मन दोनों से सुंदर है। उन्हें अरण्य में खो चुकी रामकथा, आज इस अध्याय में उन्हें पुनः पाकर स्वंय सुंदर हो उठी है। सीता के दुबारा दर्शन से अधिक सुंदर घटना पूरी रामकथा में दूसरी कोई नहीं है।

हनुमान सीता के सामने प्रस्तुत होते हैं, उन्हें अपना परिचय देते है, राम की मुद्रिका दिखाकर विश्वास दिलाते है कि वे प्रभु श्री राम के ही दूत हैं, और उन्हें भरोसा दिलाते है कि अतिशीघ्र रावण को हरा कर प्रभु उन्हें वापस ले जाएंगे। फिर सीता से अनुमति प्राप्त कर वे फल खाने अशोक वाटिका के उस हिस्से में चले जाते हैं जहां फलों के

पेड लगे हैं। फल खाने के दौरान वे पेड़ो को नुकसान पहुंचाना शुरू कर देते है और भारी उपद्रव खडा हो जाता है। रावण के सैनिक उन्हें बंदी बनाना चाहते है और युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। शक्तिशाली हनुमान वृक्षों को ही उखाडकर प्रहार करना शुरू कर देते हैं और रावण का पुत्र अक्षय कुमार इस युद्ध में मारा जाता है। रावण का बड़ा पुत्र मेघनाद उन पर ब्रह्मस्त्र का प्रयोग करता है और हनुमान इसलिए उसकी गिरफ्त में आ जाते हैं कि इस अस्त्र की महिमा बनी रहे। उन्हें रावण के सामने प्रस्तुत किया जाता है, त्रिलोकाधिपति रावण के सामने। हनुमान के हाथ और पैर बंधे हैं, रावण के एक इशारे पर उनका वध सम्भव है। क्षण भर में सबकुछ बदल सकता है, लेकिन हनुमान की बुद्धि जरा भी विचलित नहीं होती। बिना किसी संकोच के उन्होंने कह दिया कि वे उस चराचर के नायक के दूत है जो रावण जैसे पापियों को दण्ड दिया करते हैं। हनुमान जाति से तो कपि है परंतु बुद्धि से यति हैं। प्रभु के कार्य के अलावा उन्हें कुछ सूझता ही नहीं। रावण को समझाने की पूरी कोशिश उन्होंने की। हनुमान की भक्ति भावना की सुंदरता तो पूरी रामकथा में दिखती है परंतु उनके बल-बुद्धि-कौशल की सुंदरता सुंदरकाण्ड में ही दिखती है।

हनुमान को दण्ड देने के लिए रावण उनकी पूँछ में आग लगा देता है, हनुमान अपनी पूँछ इतनी लम्बी कर लेते है कि सारे शहर में आग लग जाती है, कोहराम मच जाता है। फिर, समुद्र में अपनी पूंछ बुझा कर, वे सीता के पास पहुंचते हैं, उनका संदेश और चूडामणि लेकर विदा लेते है और सागर लांघकर, अपने वानर साथियों के साथ वापस किष्किंधा पहुंचते हैं। वह क्षण भी आ पहुंचता है जब विकल राम को यह समाचार प्राप्त होता है कि उनकी सीता जीवित है, उनकी प्रतीक्षा में रत है। हनुमान ने सीता की विशाल विपत्ति का वर्णन किया, उनकी चूडामणि उन्हें सौंप दी और रावण को हरा कर सीता को वापस ले आने का भरोसा दिलाया। सीता के विरह में डूबे राम ने हनुमान के सामने अपना हृदय निकाल कर रख दिया, वानरों की सेना बनाकर राक्षसराज रावण पर चढ़ाई की तैयारी शुरू की दी, लेकिन राम को अपने चरित्र की वास्तविक सुंदरता का प्रमाण देना अभी भी शेष है। राम के सामने समर्पण करने की सीख देने वाले भाई विभीषण को रावण ने निकाल दिया और विभीषण राम के सम्मुख आ पहुँचे। विभीषण शत्रु के भाई हैं, किंतु सामने समर्पित हो गुहार लगा रहे है—

श्रवण सुयश सुनि आयउ, प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरण, सरन सुखद रघुबीर।

और, प्रभु ने उन्हें उठा कर गले से लगा लिया। राम के चरित्र की बराबरी कोई नहीं कर सकता, उन्होंने शबरी का उद्धार किया, केवट से मित्रता की और इतना तो कुछ नहीं आज शत्रु को गले से लगा लिया। विचित्र है राम का चरित्र जिसमें उदारता भी क्रांतिकारी है। राम के चरित्र का सौंदर्य अप्रमेय है।

सुंदरकाण्ड में सभी कुछ सुंदर है। सुंदरकाण्ड के पाठ अथवा श्रवण मात्र से मनुष्य जन्म जन्मांतर के पाप से छूट जाता है। इस काण्ड में काव्य इतना सहज है कि एक बालक का मन भी मुग्ध हो जाए, अनुशासन की सीख ऐसी है कि कोई किशोर अपने चरित्र निर्माण को प्रेरित हो जाए, दायित्त्वों का विधान ऐसा है कि कोई युवा अपने सामाजिक और पारिवारिक कर्तव्यों के प्रति समर्पित हो जाए, और अनन्य भक्ति की ऐसी कामना है कि कोई वृद्ध जीवन के लक्ष्य के साधन में तत्पर हो जाए। सुंदर काण्ड में काव्य भी सुंदर है और उक्तियाँ तो इतनी सुंदर है कि उन्हें मंत्रों के समान महत्त्व प्राप्त है। इसीलिए कहा गया है किः

सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे सुन्दरी कथा, सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे सुन्दरं वनम्।
सुन्दरे सुन्दरं काव्यं सुन्दरे सुन्दरः कपिः सुन्दरे सुन्दरं मन्त्रं सुन्दरे किं न सुन्दरम्।।

नयी दिल्ली

आचारः परमो धर्मः

बिजय कुमार
आइआरटीएस, गोरखपुर

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः।।

वेदों में कहा हुआ और स्मृतियें में भी कहा हुआ जो आचरण है वही सर्वश्रेष्ठ धर्म है इसीलिए आत्मोन्नति चाहने वाले को चाहिए कि वह इस श्रेष्ठाचरण में सदा निरन्तर प्रयत्नशील रहे।

आचारः परमो धर्मः आचारः परमं तपः।
आचारः परमं ज्ञानम्, आचरात् किं न साध्यते।।

''धर्म क्या हैं?'' धर्म मनुष्य को जीवन पथ पर निरंतर अग्रसर होने की प्रेरणा देता है। ''आचारः परमो धर्मः''अर्थात् आचार ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। नैतिक मूल्यों के सिद्धांतों पर जीवन यापन करना ही धर्म हैं। परन्तु, वर्तमान परिपेक्ष में, नैतिकता पर चलते हुए जीवन किस तरह जिया जाए, ये एक बड़ी चुनौती है। ऐसी परिस्थिति में, हमें बहुत सोच-विचार के हर कदम बढ़ाना होगा और काँटों से बचते हुए अपनी राह बनानी होगी। जो अपने मार्ग से भटक गए हो, उन्हें राह दिखाना भी हमारा कर्त्तव्य है।

महात्माँ गाँधी के अनुसार, ''जहाँ धर्म नहीं, वहां विद्या, लक्ष्मी, स्वास्थ्य आदि का भी अभाव होता है। धर्म रहित स्थिति में बिलकुल शुष्कता होती है, शून्यता होती है।''धर्म के द्वारा मनुष्य अपने जीवन को सही ढंग से व्यतीत कर सकता है। हर व्यक्ति के समक्ष दो रास्ते होते है, धर्म या अधर्म; ये उस पर निर्भर करता है कि वह कौन सा रास्ता चुन कर जिन्दगी में आगे बढता है। धर्म का रास्ता चुनने पर,वो कर्तव्य से विमुख होकर पशुत्व की ओर बढ़ता चला जाता है और अपने मार्ग से पूरी तरह से भटक जाता है। अतः हर मनुष्य को पुरूषार्थ के पथ पर अग्रसर होकर धर्मवत् जीवन व्यतीत करना चाहिए।

हमारे वेदों में कहा गया हैं सदाचरण से बड़ा कोई धर्म नहीं है, सदाचरण सबसे बड़ा तप है, सदाचरण सबसे बड़ा ज्ञान है, सदाचरण से कोई ऐसे वस्तु नही जो प्राप्त ना किया जा सके हैं।

आचरण का महत्त्व

स्वामी दयानंद की दृष्टि में मनुष्य का आचरण सर्वोपरि था। मुरादाबाद प्रवास के समय की घटना है। साहू श्यामसुन्दर जो मुरादाबाद का धनाढय् मगर ढीले चरित्र का व्यक्ति था, ने स्वामी जी को अपने घर पर भोजन के लिए आमंत्रित किया। स्वामी जी ने उसके निमंत्रण को अस्वीकार कर दिया। साहू श्यामसुन्दर ने इस भेदभाव का कारण जानना चाहा। स्वामी जी ने कुछ भी उत्तर न दिया। बाद में व्याख्यान में स्वामी जी साहू श्यामसुन्दर को सम्बोधित करते हुए बोले''जब जक आप अपना आचरण नहीं सुधारेंगे,'' मैं कभी आपके घर नहीं जाऊँगा।''

व्याख्यान सुनने वालों पर इस घटना का व्यापक प्रभाव हुआ।

मानव जीवन में सद्व्यवहार और सदाचरण का बहुत महत्त्व है। व्यवहार की मृदुता और आचरण की शुचिता से न सिर्फ व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास होता है बल्कि मानसिक शांति भी मिलती है।

सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह सामाजिक नियमों का पालन करे। सामने वाले व्यक्ति से ऐसा व्यवहार करे जिससे अपनत्त्व की भावना जागृत हो। हम जैसा व्यवहार दूसरे के साथ करेंगे, वैसा ही व्यवहार दूसरा भी हमारे साथ करेगा। दूसरे से अच्छे व्यवहार की अपेक्षा करने से पहले हमें उसके साथ अच्छा व्यवहार करना चाहिए। जीवन रूपी गाड़ी को बिना बाधाओं के चलाते रहने में महती भूमिका निभाता है। व्यवहार तथा आचरण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब तक आचरण शुद्ध नहीं होगा, तब तक व्यक्ति में सद्व्यवहार का गुण विकसित नहीं होगा। सच बोलना, चोरी न करना, किसी को दुख न देना, बड़ों का सम्मान करना तथा नैतिक मूल्यों की रक्षा करना जैसी सारी बातें आचरण की शुचिता में आती हैं। स्वंय के परिश्रम से तथा भगवान की कृपा से धन-दौलत कमाना और जितना मिले उसी में संतोष करना शुद्ध आचरण की पहचान है। यदि आचरण शुद्ध हो तो व्यवहार स्वतः सुधर जाता है। व्यवहार तथा आचरण को हमारे पारिवारिक संस्कार तथा सामाजिक व्यवस्थाएँ प्रभावित करते हैं।

हम जैसे समाज में पलते-बढ़ते हैं वैसे ही बन जाते हैं।

आचरण से हमारा व्यवहार प्रभावित होता है तो व्यवहार से सामाजिक प्रतिष्ठा। अच्छे व्यवहार तथा अच्छे आचरण से अद्‌भुत-असीम सुख प्राप्त होने के साथ-साथ आनंद की अनुभूति भी होती है। सद्‌व्यवहार और सदाचरण से ही मानव जीवन सार्थक होता है। इन्हीं से मानवता जन्म लेती है।

व्यक्ति के जीवन में आचरण का विशेष महत्त्व है। श्रेष्ठ आचरण से व्यक्ति का बहुमुखी विकास होता है। खाली हाथ मनुष्य इस संसार में आता है और रोता बिलखता, खाली हाथ ही चला भी जाता है। उसका सारा ताना-बाना यहीं रखा रह जाता है। पापों की गठरी इतनी भारी हो जाती है कि एक दिन जब काल सामने होता है तो उसके पास पश्चाताप के अतिरिक्त और कुछ नही रह जाता है। इसलिए समय रहते ही अपने आचरण को ठीक करने के लिए सद्‌गुणों को बढ़ाने का प्रयास करें ताकि इस संसार से विदा होने के बाद भी लोग सूरदास, तुलसी, कबीर और मीरा की तरह आपको याद करें। बुद्ध, नानक और महावीर आज अपने सद्‌कर्मों की वजह से आज भी अमर हैं। इन सबने सबसे पहले अपने अंदर सदाचरण का बीज बोया। इसलिए अपने इस अमूल्य जीवन की सार्थकता को समझें। जो सदाचारी है वह ईमानदारी और मेहनत से कमाई करता है। ध्यान रहे, यह शरीर एक मंदिर है। इसके लिए अस्वास्थ्यकर पदार्थों का सेवन कर इसे बर्बाद न करें। जो विवेकी लोग होते है, वे अपनी शक्ति और धन को भले कार्यों में लगाते हैं। माना कि इस संसार में व्यक्ति को अपना जीवन आनंदपूर्वक जीना चाहिए, प्रकृति प्रदत्त सुखसुविधाओं का लाभ भी उठाना चाहिए। लेकिन भूलकर भी जीवन में कुत्सित विचारों और विषयवासनाओं को पनपने नहीं देना चाहिए। जो जीवन को धैर्य और संयम के साथ जीते हैं और जिनके विचार और चिंतन शुभ होते हैं वे एक न एक दिन परमात्मा की शरण में पहुँच जाते हैं। जो भी सत्ता, संपत्ति, सत्कार जीवन में मिलता है, उसे देने वाला एक न एक दिन जरूर वापस ले लेता है। इससे दुखी नहीं होना चाहिए।

ऐसा इसलिए, क्योकि यही अंतिम सत्य है। यदि कुछ रह जाता है तो आपके किए हुए शुभ कर्म और आपका सदाचरण। जिसका आचरण जितना अच्छा है, वह परमात्मा के उतना ही करीब है।

गोपी चीरहरण का सामाजिक और आध्यात्मिक पक्ष

स्वामी रामगोपाल दास

स्वामी राम गोपाल दास जी ने इस आलेख में भगवान श्रीकृष्ण और गोपी चीर हरण की आध्यात्मिक व्याख्या की है। विषय गंभीर है, उनका चिन्तन अपने ढंग का है। पाठक भाषा-समन्वय में न जा कर आध्यात्मिक मंथन करें। —**सम्पादक**

भगवान के चीरहरण प्रसंग पर, जो विद्यार्थियों और कम्यूनिस्टों का जो चिंतन है, वह बहुत ही नकारात्मक टिप्पणी लिए हुए है। भगवान को कपड़ा देना ही था तो अंदर ही दे दिये होते ? हिन्दू जो मान भी रहा है उसके भी अंदर-अंदर यह संशय बना ही रहता है कि, ऐसा भगवान ने क्यों किया होगा? आचार्यों ने जो इसका समाधान पक्ष प्रस्तुत किया है। अभी तक .....मोटे तौर पर जितने भी आचार्य हैं वे पूज्य चरण यह कह रहे हैं कि, गोपियों का जो वस्त्र हरण है वह वासना रूपी वस्त्र भगवान ने उठाए हैं और उनको निर्वासनिक घोषित किया है, विशुद्ध बनाया है। कुछ आचार्य कह रहे हैं कि आवरण भङ्ग किया है, उन्हें अनावरण किया है। नग्न होना मतलब आवरण से मुक्त करना है। कुल पंच आवरण हैंः- अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञान मय कोष, और आनन्दमय कोष। अगर भगवान ने उन्हें अनावरित किया तो मूल श्लोक में भगवान कुपित हैं या प्रसन्न? मूल श्लोक में भगवान श्री कृष्ण कुपित है, तो दंड देना चाहिए? अगर भगवान ने निर्वासनिक कर दिया, विशुद्ध बना दिया तो गोपियों को ये पुरस्कृत करना है फिर, एक वर्ष बाद क्यों महारास होगा? भगवान आज ही क्यों नहीं उनके जीवन में आ जाते?

आइये, पूर्वाचार्यो के चरण कमलों में नमन करते हुए इस लीला के रहस्यों को समझने का प्रयास करते हैं। हो सकता है कि इसकी गम्भीरता मुझे न समझ में आयी हो, पूर्वांचार्यों का ध्यान करते हुए मुझे जो अभिप्राप्त हुआ है उसे समझते हैं। लीलामृत को समझने के लिये पहले लक्षणा फिर व्यंजना से अर्थ करेंगे। लक्षणा से जो अर्थ होगा वह सामाजिक आचार संहिता के इर्द-गिर्द होगा और जब हम व्यंजना से अर्थ करेंगे तो वह आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में होगा। सामाजिक आचार संहिता को स्थापित करने का क्या संदेश है भगवान का, उसे समझते हैं।

आधिभौतिक स्वरूप (सामाजिक आचार संहिता)-

एकांत नग्नता का तुम प्रारम्भ करो और समाज में धर्म के गीत गाओ तो यह तुम्हारे व्यक्तित्व में विरोधाभाष है, तुम्हारे व्यक्तिगत जीवन और सामाजिक जीवन की जो दूरी है उसे सुदृढ़ करने का प्रयास कर रहे हैं ठाकुर जी, गोपी चीरहरण प्रसङ्ग में। जीवन में ऐक्यता लाने की कृपा कर रहे हैं।

आपने आम लोगों में परिचर्चाओं के दौरान सुना होगा कि जिंदगी रास नहीं आ रही है, धन-जन भी है, नौकरी भी है, संताने भी हैं, मतलब भौतिक संपदाओं से परिपूरित हैं। फिर भी, जीवन से प्रसन्न नहीं हैं, संतुष्ट नहीं है। जिंदगी का न रास आना क्या है? श्री ठाकुर जी का यह सार्वभौतिक संदेश केवल गोपियों के लिये ही नहीं अपितु समस्त साधकों के लिए है। उपनिषद् में भगवती श्रुति उन्हें रस का विग्रह बताती हैं। ऐसा उनका जीवन में न आना ही रास न होना है। श्री ठाकुर जी का जीवन में प्रादुर्भाव क्यों नहीं हो रहा है? क्योंकि हमारे कथनी, करनी और रहनी में

ऐक्य नहीं है। गोपियाँ साधक का प्रतिनिधित्व कर रही हैं। गोपियाँ समाज में तो धर्म का गीत गाती हैं, कात्यायनी व्रत कर रही हैं और एकांत में नग्न स्नान कर रही हैं। भगवान कहते हैं कि यदि एकांत में नग्नता का प्रारंभ भी तुमने किया तो पूर्णाहुति तब होगी जब हम वस्त्र हटायेंगे। ये जो चार ग्वाल-बाल हैं, ये चार आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) और चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। भगवान के वस्त्र हरण पर मुस्कुरा रहे हैं, हँस रहे हैं ये पूरे जगत् का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। चार वर्णाश्रम से युक्त जो जगत है या आधुनिक भाषा में अ,ब,स, और द, लोगों की विभिन्न श्रेणियाँ हैं ये चारों ग्वाल-बाल उनका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। भगवान कह रहे हैं यदि तुमने एकांत में नग्नता की शुरूआत की और समाज में धर्म के गीत गाये तो हम पर्दा उठायेंगे और सम्पूर्ण जगत् हँसेगा, तब तुम यदि प्रायश्चित करोगे और तुम्हारे जीवन में ऐक्यता है, तो तुम्हारा जीवन पारदर्शी होगा, खुली किताब की तरह होगा तब तुम्हारे जीवन में रस का आगमन होगा। तत्पश्चात् जीवन रसमय होगा, तब जिंदगी रास आती है। इस संदेश को देने के लिए इस कथानक में चीरहरण किया।

इन कारणों से भयभीत कोई व्यक्ति होकर मुस्लिम बन गया, इस्लाम को अङ्गीकार कर लिया। रमज़ान के महीने में नमाज़ के वक़्त वुजू न करके नदी में स्नान करने लगा इस बावत अन्य नमाजियों ने प्रश्न किया कि, वुजू के विधानोपरांत आप स्नान क्यों कर रहे हो? इस्लाम स्वीकार करने वाले ने कहा नदी है, जल प्रवाहमान है इसीलिए स्नान कर लिया। कुछ दिनोपरांत ज्ञापित हुआ कि नवीन नमाज़ी के गले में कोई वक्रकार मछली फँस गयी है, वह रोज स्नान के बहाने, डुबकी लगाने के दौरान जल पीता था। लोक में एक कहावत भी है, ऐसा चोरी करता है कि ख़ुदा का बाप भी नहीं जानता।

जब भी कोई साधक चाहे किसी भी वर्ग, समुदाय, संप्रदाय या धर्म का हो अगर वह सार्वजनिक जीवन और व्यक्तिगत जीवन में अंतर लायेगा तो भगवान श्रीकृष्ण जो टेढ़े हैं, टेढ़े काँटे वाली मछली को गर्दन में फँसा देंगे। आप रास के अधिकारी नहीं होवेंगे, जिंदगी रास नहीं आयेगी। रास तब आयेगी जब जीवन ऐक्य होगा, पारदर्शी होगा।

यह सामाजिक संदेश, सार्वभौमिक संदेश भगवान ने अपनी इस लीला के माध्यम से, कथानक के माध्यम से दिया। यह मैंने आधिभौतिक स्वरूप में (सामाजिक आचार संहिता) अर्थ किया। अब आगे आध्यात्मिक अर्थों में इसी लीला को पूज्य आचार्यचरणों को स्मरण कर समझने का प्रयास करेंगे। यह थोड़ा और महीन अर्थ है यह व्यंजना में होगा। हम जब आध्यात्मिक अर्थ देखते हैं तो कथानक के प्रत्येक पात्र आभ्यान्तरिक होते है। श्री कृष्ण भी, गोपियाँ भी, और ग्वाल बाल भी हम अपने अंदर देखते हैं। पूरा कथानक जब अंदर हो जाएगा तब आध्यात्मिक अर्थ होगा।

आध्यात्मिक : —हमसे आपने कथा सुनी और आपने निमंत्रित किया और नियम व शर्तें जानने के लिए पूछा, क्या दक्षिणा होगी? हमने कहा ''कह देंगे, आपका मन है कथा सुनने का तो इसकी दक्षिणा का ज्यादा ध्यान न कीजिए। आपका कथा में प्रेम है। तो आपको कथा सुना दूँगा।'' आपने बार-बार निवेदन किया कि कुछ भी बता दीजिए क्योंकि दक्षिणा यज्ञ की पत्नी हैं, आप कथा के उपरांत नाराज हो जाये, दुःखी हो जाए तो मैं चाहता हूँ कि आप स्पष्ट कर दें। आपके बार-बार दक्षिणादि के निवेदन करने पर भी मैनें मना किया और समाज में धर्म के गीत गाए निष्काम कर्मयोग का प्रतिपादन किया। गीता का मूल है निष्काम होना और रोने का मूल है सकाम होना। गीता निष्कामता का पाठ पढ़ाती है इसलिए गीत से गीता बनी है।

कथा विश्राम के पश्चात् भेंट में मिले लिफाफे को बार-बार देखने की चेष्टा कर रहे हैं। एकांत होने का इंतजार कर रहे हैं, जब आपने बार-बार निवेदन किया तो मैनें सार्वजनिक मंचो से कहा कि कथा निष्काम भाव से सुनाया

जा रहा है और अब यह चिंतन कर रहा हूँ कि, आपने कितना दिया? क्या मेरे योग्यता के अनुकूल है या प्रतिकूल हमारे स्वरूपानुरूप है कि नहीं दक्षिणा? निष्काम जब आप होते है उस दौरान जो सकारात्मक ऊर्जा अंदर संचारित होती है वह यमुना का प्रवाह है। यमुना जी निष्काम कर्मयोग की उद्धरण है, निष्काम कर्म उपदेश भगवान श्री कृष्ण की वह धर्म पत्नी है। भगवान श्री कृष्ण की बात ''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'' उसे अपने ढंग से कबीर साहब ने कहा है। जिसे जर्मन दार्शनिक ''इमैनुअल कांट'' कहता है ड्यूटी ऑफ प्यूरिजन में ड्यूटी फॉर सेकण्ड ड्यूटी कर्तव्य के लिए कर्तव्य करो। यमुना जी चरितार्थ करती हैं कृष्ण, कबीर और कांट के निष्काम कर्म योग के प्रतिपादन का। यमुना जी प्रयागराज में ज्यादा जल लाती है, और गहरी भी हैं गंगा की अपेक्षा, ज्यादा जल होने से, गहराई होने से उनका रंग नीला है। वैज्ञानिक चिंतन से भी गहराई के कारण से नीलापन है, प्रकाश के परावर्तन मे समय लगने के कारण नीली दिखती हैं। ऊँचाई के कारण आसमान और गहराई के कारण समुद्र नीला है।

सिद्धान्ततः छोटी नदी में बड़ी नदी मिलती है, यह बड़ी घटना है कि छोटी नदी में बड़ी नदी मिल गई। परन्तु गंगा सागर में मिलती है तो गंगासागर कहलायेगा न कि गंगा या यमुनासागर। आगे प्रवाह में जल भी गंगा जो लेकर आती हैं उसी रंग का प्रवाहित होता है, वही प्रकृति है। श्री यमुना जी ने अपना जल समर्पित कर दिया 'कर्म करे और रहे अकर्मी'। निष्काम कर्मयोग को अपनाते समय जो आपके चित में प्रवाह हो रहा है वह मानो यमुना का प्रवाह है तो जब आपने सार्वजनिक रूप से घोषित किया कि कुछ भी लेना-देना नहीं हैं, मैं कथा कह दूँगा जैसे ही हमने दक्षिणा लेने पर लिफाफा में झॉकने की कोशिश की और जानने की चेष्टा कि इसमें क्या पड़ा है? सोचने लगे, जैसे ही हम सकाम होते है तो नकारात्मक ऊर्जा संचारित होने लगती है और जो यमुना का जल है, वह दूषित होने लगता है हमारे नंगापन से यहाँ नंगा का अर्थ है सकाम होना। निष्काम होना वस्त्राभूषण से अलंकृत होना है और सकाम होना नंगा होना है, और ये जो चार ग्वाल-बाल है यह कौन हैं? इस नंगापन को कौन जाँच करेगा? हमारे कृष्ण, हमारे आत्मरूपी जगदीश इसकी जाँच करें और अंतःकरण रूपी मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकार ये चार जो हैं ये हँसे और फिर हम प्रायश्चित करते हुए हम प्रार्थना करें।

जब तक हम नहीं मानेगें, अधिकांशतः यह मानते है कि हमें नंगा कोई और कर रहा है तब तक हम बचने का उपाय करते हैं। जब अपने को अपने आप से नंगा करते हैं, अपने दृष्टि में नंगा होते हैं, और हमारा अंतःकरण उन पर हँसता है, हम अपनी त्रुटियों पर खुद ध्यान देते हैं प्रायश्चित करने लगते है। तब प्रार्थना से हमारे जीवन में भगवान का अविर्भाव होता है। जीवन में रस आता है और तदुपरांत महारास होता है। यह गोपी चीरहरण का आध्यत्मिक संदेश पूज्य पूर्वाचार्यों को स्मरण करते हुए लिखने का प्रयास किया।

श्री मणिराम दास छावनी (अयोध्या)

दुर्जनः परिहर्तव्यः विद्ययाऽलंकृतोऽपिसन्।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः।।

मानसवर्णित समाज के शोचनीय व्यक्ति-साम्प्रतिक सन्दर्भ

डॉ. शम्भुनाथ त्रिपाठी 'अंशुल'

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा प्रणीत महाकाव्य श्रीरामचरित मानस एक ऐसा अनूठा ग्रन्थ है, जिसमें समाज के प्रत्येक वर्ग को मार्गदर्शन एवं प्रत्येक समस्याओं का समाधान प्राप्त होता है। इस असार संसार में मनुष्य माया जन्य विडम्बनाओं में उलझकर अपने अस्तित्व को भूल जाता है। मानव मूल्यों का विस्मरण कर पथभ्रष्ट हो जाता है। आज के वैज्ञानिक युग में तो मनुष्य अपने को सर्वसमर्थ मान बैठा है, जबकि उसका कोई भी उपक्रम उस परमसत्ता के आधीन है। इस यथार्थ सत्य से विभ्रमित मानव धीरे-धीरे माया-मोहवश जीवन के अमूल्य क्षणों को निष्फल व्यतीत कर जाता है गोस्वामी जी एक ओर जहाँ संत शिरोमणि थे, वहीं शास्त्र वेत्ता सिद्धहस्त महाकवि के साथ समाज के उन्नायक सुधारक भी थे। उनकी सृजन शीलता ने तत्कालीन समाज को एक अभिनव मार्ग प्रशस्त कर जीवन धन्य करने का सुअवसर प्रदान किया है। समाज के विभिन्न वर्गों को उनकी स्थिति के अनुसार कल्याणप्रद कर्म करने का सुझाव मानस के अन्तर्गत विविध प्रसंगों के आधार पर प्रस्तुत करते हुए गोस्वामी जी ने एकता, सौहार्द एवं राष्ट्रीय चेतना को जागृत कर अध्यात्म चिन्तन की ओर समाज को अग्रसर करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत राम के चौदह वर्ष वनवास हेतु चले जाने पर महाराज दशरथ के गोलोकवास के बाद ननिहाल से वापस आये भरत-शुत्रघ्न के शोकग्रस्त होने के कारण अयोध्यावासी किंकर्तव्यविमूढ़ से हो चुके थे। सभी चिन्तामग्न हो भगवान राम के वियोग और महाराज दशरथ की मृत्यु से अत्यन्त असहाय की स्थिति अनुभव कर रहे थे। उस समय भरतलाल जी को ज्ञानवर्धक उपदेश देकर गुरु वशिष्ठ ने बहुत समझाया और दशरथ जी के प्रति चिन्तित भरत को चिन्तारहित करने का प्रयास किया। वशिष्ठ जी कहते हैं—

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु, जीवनु, मरनु, जसु अपजसु विधि हाथ।।

अयो.179 दोहा

अर्थात् हे भरत! होनहार अथवा भवितव्यता अत्यन्त बलवान है। इस पर किसी का भी वश नहीं चलता है। फिर हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश जैसे तत्त्व तो पूर्णतया ईश्वराधीन हैं। ये मानव के अधिकार क्षेत्र से बिल्कुल पृथक् है। इसलिये इन विषयों के सन्दर्भ में व्यक्ति का चिन्तन करना ही व्यर्थ है। यहाँ वशिष्ठ जी ने स्पष्ट कहा है कि महाराज दशरथ की मृत्यु के कारणादि तथ्यों पर शोच करना निरर्थक है क्योंकि वह तो प्रारब्ध था, जो दैवाधीन है उस पर स्वकीय चिन्तन तो व्यर्थ ही होता है। अस्तु हे भरत! सम्प्रति महाराज दशरथ कथमपि सोच करने योग्य नहीं हैं। किसी को दोष देना अथवा किसी के ऊपर क्रोध करना दोनों निष्प्रयोज्य हैं। इसी प्रसंग में भरत को निश्चिन्त करने की भावना से गुरु वशिष्ठ ने समाज के विभिन्न वर्गों की शोचनीय स्थिति का उल्लेख किया है। उनके मतानुसार समाज के अधोङ्कित व्यक्ति की मनोदशा चिन्तनीय होती है। इस सन्दर्भ का वर्णन गोस्वामी जी ने अयोध्याकाण्ड के 172 एवं 173 दोहे के अन्तर्गत इस प्रकार व्यक्त किया है।

सोचिअ विप्र जो बेद बिहीना। तजि निजधरमु विषय लय लीना।।
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।।

अर्थात् वह ब्राह्मण शोचनीय है जिसे वेद का ज्ञान न हो। वेद विहीन होकर वैदिक परम्पराओं से विरत ब्राह्मण जो अपने सनातन धर्म का परित्याग कर विषय-भोग में ही लीन रहता हो वह सोच करने योग्य है। साथ ही वह राजा जिसमें नीति निपुणता न हो अर्थात् जो राजा नीतिज्ञ न हो और जिसे अपनी प्रजा प्राणों के समान प्यारी न हो, वह शोच्य है। वर्तमान का भारतीय लोकतंत्र और शासन व्यवस्था से जुड़े राजनीतिज्ञों को इस सन्दर्भ से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। क्योंकि आज का राजा प्रधानमंत्री अथवा मुख्यमंत्री देश व समाज के हित चिन्तन से विमुख दिखाई देता है। सम्प्रति ये लोग समाज को अथवा अपनी प्रजा को किसी प्रकार प्रेम नहीं दे पाते हैं अपितु मात्र स्वार्थ पूर्ति में निमग्न हैं। यहाँ मानस का यह सन्दर्भ प्रासंगिक और जीवन्त हो उठता है कि इनकी दशा शोचनीय है।

सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि शिव भगति सुजानू।
सोचिअ सूद्र विप्र अवमानी। मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी।

उस वैश्य का सोच करना चाहिए जो धनवान् होकर भी कंजूस है और जो अतिथि सत्कार तथा शिव भक्ति करने में कुशल नहीं है। यहाँ वैश्य का आशय वर्तमान पूँजीपतियों अथवा धनवानों से ग्रहण करना चाहिए। अतएव वह पूँजीपति सोचनीय है जो धन संग्रह करके निर्धनों, असहायों के प्रति उदार न हो अथवा अतिथियों की सेवा में जिसकी रूचि न हो, और जो श्रद्धाभक्ति पूर्वक अपने धन को धार्मिक कृत्यों में न व्यय करता हो। वह मानस के अनुसार निन्द्य एवं शोचनीय है। ज्ञातव्य है कि गोस्वामी जी ने वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुरूप वर्णों की शोचनीय दशा का वर्णन किया किन्तु क्षत्रिय वर्ण का कहीं भी चित्रण नहीं किया क्योंकि वे जानते थे कि आगे चलकर इन क्षत्रियों का क्षात्रधर्म नहीं रह पायेगा। उनके अस्तित्व का संकट भॉपकर ही गोस्वामी जी ने उन्हें इस दशा से बिल्कुल ही पृथक् कर दिया। जैसा कि आप जानते हैं कि क्षत्रिय धर्म था राजा के रूप में शासन करना और प्रजा का पालन करना आज इस लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में वर्ण व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो चुकी है और क्षत्रिय यानी राजा का अस्तित्व नष्ट हो चुका है। अतएव राजा (क्षत्रिय) के रूप में आज के शासकों को अधिगृहीत करना ही समीचीन होगा जिसकी चर्चा गोस्वामी जी ने पहले ही कर दी है कि वह राजा जो नीति का ज्ञान नहीं रखता और प्रजावत्सलता जिसमें नहीं है, वह निन्द्य एवं शोचनीय है। इसी तरह वे शूद्र खुद पर विचार करें जो ब्राह्मणों का अपमान करने वाले हैं, मान-बड़ाई की महत्वाकांक्षा रखते हैं अथवा अपने ज्ञान का घमंड करने वाले हैं।

सोचिअ पुनि पति वंचक नारी। कुटिल कलह प्रिय इच्छाचारी।
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुर आयसु अनुसरई।।

पुनः उस स्त्री को सोच करना चाहिए जो पति को छलने वाली, कुटिल, कलहप्रिय स्वेच्छाचारिणी है। अर्थात् पतिव्रता स्त्री कथमपि शोच्य नहीं है इसके विपरीत जो नारियाँ अपने पति से छल प्रपंच कर परपुरुषगामिनी, कलह करने वाली एवं कुटिल स्वभाव की होती हैं समाज में वही निन्द्य हैं, वही शोचनीय हैं। उस ब्रह्मचारी को भी सोचनीय अवस्था में मानना चाहिए जो अपने ब्रह्मचर्य्य व्रत का परित्याग कर देता है तथा अपने गुरु की आज्ञा का पालन न कर स्वेच्छाचार करता है। ऐसा वटु (ब्रह्मचारी) सर्वथा चिन्तनीय होता है।

सोचिअ गृही जो मोह बस, करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंचरत, बिगत बिबेक बिराग।।

यहाँ पर वशिष्ठ जी ने आश्रम पद्धति के विविध सोपानों में शोच्य व्यक्तियों का संकेत किया है। गार्हस्थ जीवन व्यतीत करने वाला वह गृहस्थ सोच का भागी होता है जो मोहग्रस्त होकर कर्म मार्ग का त्याग कर देता है। अर्थात् एक सद्गृहस्थ को जो धर्म कर्म बताये गये हैं, अतिथि सेवा, गो, गंगा, गायत्री दान-धर्म आदि सत्कर्म का जो नियमित पालन नहीं करता, वह गृहस्थ स्वतः सोच का अधिकारी हो जाता है। इसी प्रकार उस संन्यासी को सोच करना चाहिए जो जागतिक प्रपञ्चों में उलझा हुआ है और ज्ञान-वैराग्य से हीन हो गया है। कहने का आशय यह है कि सन्यस्त महापुरुष को संसार के विविध प्रपंचों में नहीं फँसना चाहिए। इसके विरुद्ध जो यती-साधु ऐसे संसार के बन्धन युक्त प्रपंच में फँस जाते हैं और ज्ञान तथा वैराग्य आदि निर्वेद मूलक तत्वों से विरत हो जाते हैं वे निश्चित रूप से चिन्तनीय अथवा सोच के विषय बन जाते हैं।

बैखानस सोइ सोचै जोगू। तपु बिहाई जेहि भावई भोगू।
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुर बन्धु विरोधी।

वानप्रस्थ वही सोच करने योग्य है, जिसका मन तपस्या में नहीं लगता अपितु भोग विलास में आसक्ति रहती है। भाव यह कि गृहस्थ आश्रम के बाद वानप्रस्थ आश्रम एक ऐसा काल है जिसमें व्यक्ति वार्द्धक्य की ओर उन्मुख होता है इस व्यवस्था में स्वभावतः भोग से विरति होने लगती है किन्तु जिसका मन इस अवधि में भोग ऐश्वर्य एवं सुख में ही संलिप्त रहता हो, जप-तप ध्यान में तनिक भी आसक्ति न हो ऐसा वानप्रस्थी सर्वदा सोच करने योग्य होता है। अर्थात् उसकी क्या गति होगी यह चिन्ता का विषय है। सोच उस व्यक्ति को भी करना चाहिए जो पिसुन अर्थात् चुगलखोर है, बिना कारण ही क्रोध करने वाला है तथा माता-पिता, गुरु एवं भाई-बन्धुओं के साथ विरोध रखने वाला है। आज प्रायः यह देखा जाता है कि समाज में ऐसे ही व्यक्तियों का बाहुल्य है जो सदैव चुगल खोरी, चापलूसी में संलग्न रहते हैं, अकारण ही क्रोध फूट पड़ता है तथा माता-पिता, श्रेष्ठ जनों अथवा भाई-बन्धुओं से विरोधभाव बनाये रहते हैं। समाज के ऐसे तत्व निन्द्य तो हैं ही वे सोचनीय भी हैं।

सब विधि सोचिअ पर अपकारी। निज तनु पोषक निरदय भारी।।
सोचनीय सबही बिधि सोई। जो न छाड़ि बलु हरिजन होई।।

अन्ततः गोस्वामी जी लिखते हैं कि सब प्रकार से उसका सोच करना चाहिए जो दूसरों का सदैव अनिष्ट चिन्तन करता है। अर्थात् जो व्यक्ति, परोपकारी न होकर अपकारी हो जाता है वह चिन्तन करने योग्य बन जाता है। भाव यह कि दूसरों का अहित चिन्तन या अकल्याण सोचने वाले व्यक्ति सोचनीय हैं। साथ ही जो केवल अपने ही शरीर का पोषण करने वाला और अत्यन्त निर्मम स्वभाव का व्यक्ति हो वह भी सोच का पात्र है। मतलब यह कि जिस व्यक्ति के हृदय में दयालुता न हो निर्दय स्वभाव वाला हो और केवल अपने स्वार्थ और अपने तन के सँवारने व साज सज्जा तक सीमित रहने वाला हो वह व्यक्ति भी सोच का कारण होता है। तथा वह तो सभी प्रकार से सोच करने योग्य है जो छल-प्रपञ्च छोड़कर भगवान की भक्ति नहीं करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस मनुष्य का अन्तर्मन विशुद्ध नहीं होता, छल-कपट का भाव भरा होता है और उसके हृदय में भक्ति का अंकुरण नहीं होता वह व्यक्ति सबसे अधिक सोच करने योग्य है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संत शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने समाज के विविध पक्षों का सन्दर्भ उजागर करते हुए यह सुस्पष्ट कर दिया है कि कौन-कौन व्यक्ति सोच के मूल तत्व हैं। वर्तमान समाज

के परिप्रेक्ष्य में नीतिगत ये सारे सिद्धान्त सर्वथा प्रासंगिक एवं उपादेय है। समाज के उन सभी घटकों को इन सूत्रों पर ध्यान देकर अपने में सुधार करने की आवश्यकता है। इन सूत्र सन्दर्भों का महत्व आज भी समाज के लिए अनुकरणीय व समीक्षण करने योग्य है। चाहे वह राजा हो अथवा प्रजा, गृहस्थ हो अथवा संन्यासी, ब्रह्मचारी हो अथवा वानप्रस्थ, ब्राह्मण, वैश्य अथवा शूद्र, चाहे जो हों यदि उनमें तज्जन्य सद्गुण अथवा वैशिष्ट्य विद्यमान नहीं है तो वे सोच करने योग्य हैं अस्तु राजा में प्रजावत्सलता आवश्यक है, ध्यातव्य है आज के युग में राजा वही है जो सत्तासीन है और आज के सत्ताधारी कितने प्रजा पालक हैं यह जग जाहिर है। आये दिन घपला, गबन, घोटालों का सिलसिला दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। शासकों में प्रजा के प्रति दायित्व बोध नाम की कोई चीज ही नहीं रह गयी है। पाश्चात्य संस्कृति के अपकृत्य भारतीय नारियों को दूषित कर रहे हैं पति वंचकता आज की प्रवृत्ति बन गयी है। पूँजीपतियों की शोषण वृत्ति समाज को खोखला बनाये दे रही है। वर्ण परम्परा नाम की कोई स्थिति आज नहीं है। ब्राह्मणों का अपमान करने वाले अहंमन्य मुखर महत्वाकांक्षी लोगों का तो आज बोलबाला है। आप ही विचार करें ऐसी स्थिति में समाज और देश का पतन नहीं होगा तो क्या होगा। ऐसे में देशोद्धार एवं राष्ट्रीय विकास की परिकल्पना करना ही व्यर्थ है। अस्तु जनकल्याण एवं राष्ट्रहित के लिए सामाजिक सन्तुलन परमावश्यक है प्रत्येक भारतवासी को इस पर विवेक पूर्वक चिन्तन करना ही कल्याणप्रद होगा।

महामंत्री
अ.भा.रामायण मेला समिति प्रयाग
'ऋचायतन' 350वीं, नया बैरहना प्रयागराज
मो. 9919409727

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

क्रोध से मनुष्य की मति मारी जाती है, यानी मूढ़ हो जाता है, जिससे स्मृति भ्रमित हो जाती है। स्मृति-भ्रम हो जाने से मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है और बुद्धि का नाश हो जाने पर मनुष्य खुद अपना ही नाश कर बैठता है।

परतंत्र, स्वतंत्र तथा आजाद

महेन्द्र प्रसाद शुक्ल

भारतवर्ष की अब तक की व्यवस्था को या यों कहे कि दृश्य जगत मानव सहित अवतरण के पश्चात् व्यवस्था को पांच भागों में बाँटा जा सकता है। पहली-जंगली (व्यवस्था विहीन); दूसरी—महापुरुषों की व्यवस्था; तीसरी—जमींदारों, राजाओं (मुगल भी सम्मिलित) की व्यवस्था; चौथी-विदेशी व्यवस्था (परतन्त्र); पाँचवीं—अपनी व्यवस्था (स्वतंत्र) पांचवी व्यवस्था ही वर्तमान में चल रही है।

प्रथम व्यवस्था में कोई व्यवस्था थी ही नहीं। सिवाय अदृश्य शक्ति द्वारा प्राप्त मानव की स्वयं की बुद्धि-विवेक की व्यवस्था, दूसरी व्यवस्था महापुरुषों की थी। जिन्होंने व्यवस्था को केवल कर्तव्य से जोड़ा अधिकार शून्य मानव समाज था। व्यवस्थापक महापुरुष तथा मानव समाज दोनों कर्तव्यशील थे, अधिकार विहीन थे। दण्ड केवल सामाजिक था वह था अमानवीय कर्म करने वालों से दूरी बनाना। तीसरी व्यवस्था-जमींदारों राजाओं की थी उनकी सोच ही उनका अधिकार था। कर्तव्य उनकी सोच वाले अधिकार के पालन में था। चौथी व्यवस्था विदेशी शासकों की थी जो कानून व दण्ड से चलाई जा रही थी। कानून व दण्ड भारतवर्ष की संस्कृति के अनुसार न होकर विदेशी था। इस व्यवस्था को हम परतन्त्र की श्रेणी में रखेंगे। पर का अर्थ—दूसरे, तंत्र का अर्थ—व्यवस्था। यानि दूसरे की व्यवस्था में मानव जीवन जी रहा था। 15 अगस्त, 1947 को परतंत्र शासन समाप्त हो गया। स्वतंत्र शासन (अपनी व्यवस्था) में भारत वर्ष आया। स्व का अर्थ—अपनी, तंत्र का अर्थ—व्यवस्था। भारत वर्ष की अपनी व्यवस्था का आगमन जिसे स्वतंत्र कहते हैं। स्वतंत्र का अर्थ है अपनी व्यवस्था।

स्वतंत्र शब्द केवल व्यक्तिगत मानव तथा मानव समूह के अवैध नियंत्रण वाली व्यवस्था की मुक्ति से सम्बन्धित है न कि उसके सामान्य जीवन काल में कर्म के लिए। जिसका लोग गलत अर्थ व्यक्तिगत रूप में कर्म को स्वतंत्र का रूप समझते हैं। यह देश पहले परतंत्र यानि दूसरे की व्यवस्था में था, 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र मतलब अपनी व्यवस्था में आया। परतंत्र या स्वतंत्र व्यक्तिगत मानव के लिए नहीं है। बल्कि देश के लिए हैं, दोनों व्यवस्थाओं में मानव को कानून व दण्ड की परिधि में ही कर्म करना है। अन्तर केवल इतना है कि परतंत्र की व्यवस्था में मानव के ऊपर अपना न समझकर अत्याचार किया जाता था। वह अपने को व मुझे मानव की श्रेणी में न समझकर अपने को विदेशी हमें हिन्दुस्तानी समझकर अत्याचार करता था। इसीलिए यहाँ की सम्पत्ति अधिकांशतः अपने देश अपने देशवासियों के लिए ले जाते थे। यदि वह अपने व हमें मानव समझते तो ऐसा न करते। यहाँ की सम्पत्ति का उपयोग भारतवर्ष में स्वाभाविक विकास के लिए करते तथा सम्पत्ति की व्यवस्था करने वालों पर अत्याचार न करते। यानि कि भारतवर्ष के मानव पर अत्याचार न करते। क्योंकि उन्हीं के द्वारा कर्म फल से प्राप्त सम्पत्ति को वे अपने यहाँ ले जाते थे।

वर्तमान में भारतवर्ष के अधिकांशतः मानव जब कोई अमर्यादित कर्म करते हैं, तो वह कहते हैं कि हम स्वतंत्र हैं। यह भ्रमित सोच हैं। स्वतंत्र व्यक्तिगत मानव के लिए हो ही नहीं सकता हैं। स्वतंत्र शब्द अवैध नियंत्रण के मुक्ति से परे हैं। परतंत्र अपने देश में दूसरे की व्यवस्था से था। दोनों शब्द देश से सम्बन्धित है न कि व्यक्तिगत।

इसके पश्चात् अधिकांशतः मानव 'आजाद' शब्द व्यक्तिगत के लिए उपयोग करते हैं। आजाद शब्द मानव के लिए शून्य अर्थ रखता है। आजाद मानव से भिन्न जीव जो कहीं बँधा हो, पिंजरे में बन्द हो, किसी सीमा में निरुद्ध हो, वह जब वहाँ से छूटता है तो वह आजाद की श्रेणी में आता हैं। मानव से भिन्न जीव आजाद हो सकता है लेकिन मानव नहीं। मानव अदृश्य शक्ति से प्राप्त विवेक व मानवता से बंधा है तत्पश्चात् यदि उपलब्ध है तो देश के संविधान, नियम, कानून से बंधा है। मानव आजाद कभी हो ही नहीं सकता है। परतंत्रता व स्वतंत्रता का भी आजाद से दूर-दूर तक कोई लेना देना नहीं है।

आजाद शब्द विवेक शून्य जीव के लिए है, जो आजाद शब्द को महसूस ही नहीं कर सकता है। आजाद शब्द केवल मानव ही महसूस कर सकता है चूँकि वह विवेकवान है। लेकिन आजाद शब्द सामान्य जीवन में मानव के लिए है ही नहीं। क्योंकि मानव में विवेक तथा मानवता की सीमा है। मानव सीमा विहीन नहीं है। ''आजाद'' सीमा विहीन शब्द है। सीमा विहीन परिवेश में केवल मानव से भिन्न जीव ही हो सकता है। आजाद शब्द हमें अमानवीय कर्म के तरफ अग्रसर करेगा जो मानव समाज के लिए अहितकर होगा। ऐसे कर्म करने वाला काक जीवन अनुशासित नहीं हो सकता है। मानव का अपने विवेक से मानवता की सीमा में, नियम कानून की सीमा में, महापुरुषों सहित पूर्वजों द्वारा बनाए गए नियम की सीमा में रहने पर अनुशासित जीवन माना जाएगा, आजाद रहने पर नहीं।

आजाद शब्द का शाब्दिक अर्थ लापरवाह भी होता है। आजाद होकर कर्म करने वालों को मानव समाज के बुद्धिजीवी लापरवाह की श्रेणी में मानते हैं कि उसे न मानव समाज का डर है, न कानून का डर है, न मानवता का डर है। वह अपने कर्म के प्रति लापरवाह है न कि जागरूक। उसमें जागरूकता की कमी बताते हैं। लापरवाह की संज्ञा देते हैं। जो मानव गम्भीरता से मानवीय कर्म नहीं करता उसे भी आजाद कहते हैं कि वह आजाद होकर कर्म कर रहा है, उसे कोई चिन्ता नहीं है।

आजाद-स्वतंत्र का विचार मानव में कब आना चाहिए? (1) मानवता तथा कानून के विरुद्ध कर्म द्वारा किसी मानव या उसके समूह को अवैध रूप से नियंत्रित किया गया हो। (2) जिसके परिणामस्वरूप उपर्युक्त परिस्थितियों में उक्त मानव तथा मानव समूह द्वारा मानवता मिश्रित कानून के अनुसार अपना कर्म न कर पा रहा हो। तदुपरान्त आजाद-स्वतंत्र के विचार का आगमन मानव में होना चाहिए न कि उन परिस्थितियों के अभाव में। यदि उन परिस्थितियों के अभाव में होगा तो मानवता व कानून का उल्लंघन माना जायेगा। ऐसे में मानव को चाहिए कि वह अपना कर्म निरन्तर मानवता व कानून की सीमा में रहकर करे न कि आजाद-स्वतंत्र विचार से। फलतः मानवता जिन्दा रहेगा, मानवता के जिन्दा रहने से स्वाभाविक जीवन जिन्दा रहेगा। अनुशासित जीवन की उपलब्धि होगी।

परतंत्र, स्वतत्र एवं आजाद के प्रति हम मानव अपनी सोच को बदलें। यह तीनों शब्द विवेकवान मानव के व्यक्तिगत कर्मशीलता से सम्बन्धित नहीं है। हमें अपनी कर्मशीलता को, मानवता सहित महापुरुषों तथा पूर्वजों के द्वारा बनाये गये रीति-रिवाज एवं शासन द्वारा लागू किये गये नियम-कानून की सीमा में रखना चाहिए। कर्मशीलता को परतन्त्र, स्वतन्त्र तथा आजाद पर आधारित नहीं रखना चाहिए। फलतः आनन्दित जीवन प्राप्त होगा। जो परिवार सहित जगत के लिए कल्याणकारी साबित होगा।

वसुधैवकुटुम्बकम्
उ.प्र., प्रयागराज

आतो वाता ओधषमः

राघवेन्द्र दास

वैदिक वाड्मय में ऐसे अनेक स्तुति व प्रकरण हैं जिनमें माता प्रकृति की स्तुति व संरक्षा के सूत्र हैं। ''आतो वाता ओधषमः'' अर्थात् पर्यावरण संरक्षणार्थ शुद्धि; पर ध्यान देना अनिवार्य है। ''द्यौः शान्तिः अन्तरिक्ष शान्तिः पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिः ......'आदि-आदि अनेक मंत्र हैं, जो प्रकृति के स्तोत्रार्थ व संरक्षार्थ हैं।

खैर, सम्प्रति जो परिदशा सम्पूर्ण विश्व की है वह दुःखदायी और मानव जीवन को नष्ट कृत करने के कृतसंकल्पित होते मालूम पड़ती है। माँ प्रकृति कुपित है। महामना पंडित मदन मोहन मालवीय एक वाक्य कहा करते थे, आत्मनः प्रति कूलानि परेषां न समाचरेत् अर्थात् जो व्यवहार आपको अच्छा न लगे वह दूसरे के साथ न करें, कहने का अभिप्राय यह है कि प्राकृतिक संसाधनों का दोहन भौतिक विज्ञान के चिंतन द्वारा पराकाष्ठा पर होने के कारण हम विभिन्न प्रकार के महामारी और त्रासदियों के रूप में मूल्य चुका रहे हैं। भविष्य कितना अंधकारपूर्ण है इसको हम देख ही रहे हैं। वर्तमान में चीन गणराज्य से कोरोना विषाणु ने लगभग समस्त महाद्वीपों को ग्रास बना लिया है और जन-जीवन के समस्त सांसाधनों को अस्त-व्यस्त कर दिया है। चीन के वुहान प्रांत से फैले इस विषाणु का कारण विशेषज्ञ बता रहे हैं कि, बूचड़खाने से इस विषाणु के प्रदुर्भाव होने की बात शोध में आयी है। प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध जीवन कभी भी सुखदायी और श्रेयस्कर नहीं हो सकता। भौतिक विज्ञान के प्राकृतिक दोहन के सिद्धान्त ने मनुष्य जीवन को संचार और सुविधा के सुलभ साधन तो उपलब्ध कराये हैं किन्तु, उसका एक डरावना और चिंतनीय पक्ष है मानव जीवन के समय सीमा को कम व विकृत कर दिया है। भौतिक विज्ञान केवल वरदान के रूप में ही नहीं अभिशाप के रूप में भी देखना चाहिए। जलवायु परिवर्तन जैसे प्रकृति के अभिशाप से बचने के लिए वैदिक सत्र ही कारगर साबित हो सकते हैं ''आतो वाता ओधषमः'' हम पर्यावरण की शुचिता पर ध्यान दें। वैदिक वाङ्गमय में वायु को 'विश्वभेवत् ' कहा गया है क्योंकि यह समस्त रोगों का नाश करती है। आज भी लोग स्वास्थ्य लाभ के लिए हिमालयी या प्राकृतिक वातावरण का सेवन करते हैं और अपेक्षाकृत अधिक लाभ मिलता ही हैं। 'मत्स्य पुराण' में कहा गया है ''दशपुत्र समो द्रुमः'' अर्थात् वृक्ष दसपुत्रों के बराबर है। जनहित की दृष्टि वैदिक व पौराणिक वाङ्गमय में भरपूर है वे केवल धार्मिक व आध्यात्मिक तथ्यों का ही प्रतिपादन नहीं करते अपितु सामाजिक, राजनैतिक व पर्यावरण संबंधी निर्देश भी देते हैं। यज्ञ व मंत्रोच्चार से क्रमशः वायु प्रदूषण और ध्वनि प्रदूषण के उपशमन बतलायी गयी है। ''नमस्ते वायो, त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि, त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मं वदिष्यामि, तन्मामवतु। वायु को नमस्कार है, आप प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं, मैं आपको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा। आप हमारी रक्षा करें। प्राणी मात्र में प्राण की सत्ता है और प्राण वस्तुतः वायु है।

सम्प्रति क्या हम अपने प्राकृतिक संसाधनों का अति दोहन नहीं कर रहे? ''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'' क्या पुत्र का माता के प्रति; केवल लेने का दायित्व होता है? यदि हम केवल माँ प्रकृति या पृथ्वी से लेंगे तो उसके दुष्परिणाम आने वाले भविष्य में महामारी और त्रासदी के रूप में सामने होंगे अतः हमें कृत संकल्पित होना चाहिए कि पर्यावरण का संरक्षण ही वास्तव में अपने भविष्य का संरक्षण हैं।

भौतिक विज्ञान का सिद्धान्त आत्ममुग्ध होकर अपने श्रेष्ठता की दुहाई देता रहे किंतु प्राच्य विद्या की विषय सामग्रियों के विश्लेषण व अध्ययन से ज्ञापित होता है कि, पर्यावरण संरक्षण और प्रदूषण निवारण का मूल प्रेरणा स्त्रोत प्राच्य विद्या वाङ्गमय ही है। प्राचीन काल से ही हमारे आर्य मनीषियों ने जो प्रकृति पूजा का जो सिद्धांत प्रतिष्ठित किया था वह आज भी लोक में पीपल, तुलसी, पंचवटी और विभिन्न प्रदेशों के लोक संस्कृतियों में विभिन्न रूपों में है।

प्रयागराज, उ.प्र.

सियाराम मय सब जग जानी

चाँदनी त्रिपाठी

अनेक प्रकार के चिन्तनों में पड़ी मुझ जैसी साधारण गृहणी के हाथ गोस्वामी तुलसीदास का यह मंत्र हाथ लगता है—

सियाराम मय सब जग जानी। करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी।

यह मंत्र ही मुझे प्रभु श्री राम के चरित्र में प्रवेश करने का मार्ग बना देता है, और मैं विचारों की नगरी में प्रवेश करती हुई, मन ही मन इस मंत्र का जप करती हूँः-

प्रविसि नगर कीजै सब काजा। हृदय राखि कोसलपुर राजा।।

हृदय में प्रभु श्रीराम के आ जाने पर विश्व का सम्पूर्ण कार्य हो जाता है। इसी से तो महावली हनुमान ने स्वयं प्रभु राम का काज सिद्ध किया था। इसी से मेरा प्रभु श्री राम के चरित्र में झाँकने का कार्य सिद्ध होगा।

प्रभु श्रीराम के चरित्र में झाँकने पर सबसे पहले मुझे अपने गाँव के लोकगीतों में बसे राम का चरित्र याद आता है। जहाँ सावन-भादों के समय सखियों द्वारा गाये गीत का स्मरण हो जाता है-

लछिमन कहां जानकी होइहैं, अइसी विकट अंधेरिया ना।

तभी दूसरी तरफ फूटहा स्वर याद आता है और मन में करुण रस का अथाह सागर हिलोर लेने लगता है—

केकही बइठीं कोप भवन माँ कि राम जी का बनवा होइगा ना।
सावन गरजे, भांदौ बरसे, पवन चलै पुरवाई।
कौनो बिरिछ तर भीजत होइहैं, रामलखन दूनो भाई।
कि राम जी का बनवा होइगा ना।।

घनघोर आसमान फटा पड़ रहा है और पेड़ के नीचे पानी की धार में राम और लक्ष्मण सीता को याद करते हुए काँप रहे हैं। सीता भी अशोक वाटिका में भीगती हुई राम को याद करती काँप रही हैं, दुःख से, भय से और आशंका से ठंडी-नीली पड़ती हुई—लगता है चारों ओर से करुणा-ही-करुणा बरस रही है। करुणा ही तो है आकाश से बरसता हुआ जल, करुणा ही तो है कण्ठों से फूट पड़ते गीत, करुणा ही तो है सभी को दीन-से-दीनतर बनाती ठंडी हवा के झकोरे, करुणा ही है काला दुर्मेघ अंधकार और करुणा से भिन्न थोड़े ही है हर किसी की काया बेध रही ठिठुरन। और इसी कुहासे से किरण-सी फूटती है—''**भज मन राम चरन सुखदाई।**''

करुणा के सन्दर्भ में राम के वन-गमन का दूसरा पक्ष है। राम सब कुछ त्याग कर वन जा रहे हैं-

''आगे-आगे राम चलत हैं, पाछे लछिमन भाई,
तिनके पाछे मातु जानकी, सोभा बरन न जाई
कि रामजी का वनवा होइगा ना।''

यहाँ त्याग और कर्म की भावना हिलोरे ले रही है। इसीलिए यहाँ करुणा के वातावरण में भी उत्साह है, उल्लास है, सुख है और शोभा अवर्णनीय ही है। सहसा अगली पंक्ति गूँजती है-

''राम विना मोरी सूनी अयोध्या, लछमन बिन चौपार।
सीता बिना मोरी सूनी रसोइयाँ, कउन बनावै जेवनार।
कि रामजी का वनवा होइगा ना।''

कोई व्यक्ति अपने को राम से अलग नहीं रखना चाहता, इसलिये तत्काल सभी को राम बिना अपनी अयोध्या सूनी लगती है, लक्ष्मण बिना चौपाल उदास लगती है और सीता बिना रसोई काटने दौड़ती है, तो भोजन कौन बनाये?

सूनी नगरी हो, अपनी चौपाल में कोई प्रिय भी न बैठा हो और रसोई में रसवती सिद्ध करने वाली अन्नपूर्णा भी न हो, तो भला इस जीवन में रह ही क्या जाता है, ऐसा जीवन कितना थोथा और सूना होगा? और फिर क्या बात है कि हर नगरी अपने को अयोध्या समझती है, हर चौपाल में लक्ष्मण के ही बैठने की कल्पना की जाती है और हर रसोई बनाने वाली सीता ही है? सब कुछ राम-लक्ष्मण-सीतामय। शायद इसका कारण है राम का एक पूर्ण पुरुष, पूर्ण पति और आदर्श बड़ा भाई होना, लक्ष्मण का सर्वत्यागी, सेवक और आज्ञाकारी अनुज होना तथा सीता का पूर्ण पत्नी, पूर्ण भाभी और समर्पित नारी होना। इन सबके साथ रहते अयोध्या में भला युद्ध के लिए कहाँ स्थान होगा?

भारतीय जन-मानस की इसी पूर्णता का बिम्बन करने के कारण जब-जब कहीं भी लालन का जन्म होता है, बधाई बजती है, तब-तब अवध में राजा दशरथ के द्वार पर ही बजने के लोकगीत गाये जाते हैं-

''बाजत अनंद बधाई अवध माँ''

जब-जब किसी का मुंडन, अन्नप्राशन होता है,वह बालक राम के ही रूप में देखा जाता है और बड़ा होकर वह सीता से ब्याह रचाता है। कन्या पक्ष भी अपनी लाड़ली को जानकी के ही रूप में देखता है। चाहे जितने अकिंचन और अभावग्रस्त के घर पर कन्या को व्याहने को बारात आये, लोकगीतों में वहाँ राम की ही बारात की साज-सज्जा दिखाई पड़ती है।

इसी प्रकार वसन्तोत्सव के उल्लास मय पर्व होली में चारों ओर राम ही होली खेल रहे होते हैं—

''होली खेले रघुबीरा अवध में होली खेलैं रघुबीरा।
केकरे हाथे ढोलक भल सौहे, केकरे हाथ मजीरा?
राम के हाथे ढोलक भल सौहे, लक्ष्मण हाथ मजीरा
अवध में होली खेलैं रघुबीरा।''

वर्षा आने पर राम ही पुरुवाई के साथ मल्हार की तरंगों पर झूले में आह्लादित होते हैं और राम ही राम पूरे लोक जीवन में बिखरे पड़ते हैं। यही राम अनेक बारहमासा गीतों में भी कहीं उल्लास और कहीं करुणा के साथ लोक में व्याप्त मिलते हैं।

राम-कृष्ण से ही तो सारा भारतीय साहित्य प्रेरणा लेता है। राम और कृष्ण के आधार पर ही सारा संस्कृत साहित्य लिखा गया है। कृष्ण यमुना हैं, तो राम गंगा। इन्हीं गंगा-यमुनी चरित्रों से भारतीय साहित्य की अपनी संस्कृति बन सकती है। भारतीय साहित्य का सारा क्षेत्र रसवादी है। इसे राम और कृष्ण की गंगा-यमुना ने प्राचीन काल से आधुनिक काल तक सबसे ज्यादा रस से सींचा है। इसे रस-सिंचित बनाकर मधुमती भूमिका देने में सर्वप्रथम राम ने ही अपना वरद हस्त रखा है। पहले राम एक महान् पुरुष के रूप में आये, फिर धीरे-धीरे ईश्वर हो गये।

यहाँ किसी प्रपञ्च-विस्तार में न पड़कर यही बताना सबसे उचित होगा कि समूचे भारतीय साहित्य को देखने से लगता है कि राम ने साहित्य के साथ यात्रा की है और साहित्य ने राम के साथ। इस यात्रा में राम को मानव-मन ने

अलग-अलग चोंगे पहनाये हैं, अलग-अलग परिकल्पनाएँ की हैं, विभिन्न रंगों और दंगों में सजाया है। पहले उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम माना गया। फिर धीरे-धीरे ईश्वरत्व प्रदान किया गया। आज का काल इस रूप-सज्जा की दृष्टि से बड़ा ही प्रखर काल है, क्योंकि आज राम के किन्हीं कार्यों पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुये कतिपय लोगों द्वारा उन्हें जन-न्यायालय के कटघरे में लाकर खड़ा करने का प्रयास किया जा रहा है। मुझे लगता है कि कवियों की कल्पना के राम ने हमेशा अपने को सामान्य जन से जोड़े रखा है। आदि कवि ने राम को मोहक पाया वन-पथ पर और वन की ऋतुओं में, कालिदास ने राम-छवि पर अपने को निछावर किया, उनके मानवीय परिस्थितियों में उलझने पर और तुलसी ने भी राम-वन गमन, सीताहरण, लक्ष्मण शक्ति-प्रहरण आदि-आदि प्रसंगों में राम का सामान्य लौकिक रूप ही निहारा है, तभी उनकी कविता धन्य हुई। तुलसी ने सबसे पहले बाल राम को लोक में देखा-

''भोजन करत बोलावत राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥
कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चलहिं पराई॥
धूसरि धूरि भरे तन आये। भूपति विहंसि गोद बैठाये।
भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाइ।
भाजि चलहिं किलकल बदन, दधि ओदन लपटाइ॥

राजप्रसाद में भी राम के शरीर को धूलि-धूसर पा दशरथ को आनंद मिलती है बाल-समाज के साथ खेल-कूद में राजकुमार खाना-पीना भी भूल जाता है। माँ के बुलाने पहुँचने पर वह ठुमकता हुआ भागता है और किसी प्रकार धर-पकड़ के बाद लाने पर भी भोजन करते समय चंचलता वश फिर भाग जाता है।

अनेक साधनों से भरे घर में जन्म लेकर पले-पुसे राम जब बड़े हुए और राज्याभिषेक का समय आया तो उन्हें नियति की निठुर मार सहनी पड़ी। राज्य तो दूर, लम्बी अवधि के लिये वनवास मिला। एक राजपुत्र जंगल में रहकर भला क्या कर सकता था? किन्तु यह राम का ही व्यक्तित्व था कि उन्होंने जंगल में जाकर अपना ऐसा कार्य क्षेत्र बनाया कि उनका निर्वासन, निर्वासन नहीं, वरदान सिद्ध हो गया। आज के किसी हिप्पी मॉडेल युवक जैसे राम होते, तो सारे राज्य की जनता के समर्थन का लाभ उठाकर दशरथ के विरुद्ध विद्रोह कर देते। इस व्रिदोह में उन्हें शत-प्रतिशत सफलता मिलती, किन्तु जन-मानस उन पर थूकता और इतिहास में उनका कहीं कोई स्थान न होता। आज के युवक जैसे यदि राम होते, तो वह विद्रोह के विकल्प के रूप में शराब को चुनते या फिर दशरथ पर मुकदमा दायर करके ''स्टे आर्डर'' लेकर राज्य करते। लेकिन राम ने त्याग द्वारा वह उच्चता पा ली, जो राज्य-प्राप्ति से सम्भव न थी। वह उपकरणों के बिना क्रियासिद्धि के लिये अपने संकल्प और पराक्रम का अद्वितीय उदाहरण बन गये। उन्होंने वन में साधनहीनों और सभ्यताविहीनों को शिक्षित-प्रशिक्षित करके शोषण और अनाचार के विरुद्ध जेहाद छेड़ा। इस जेहाद में नर-राक्षस, वानर-भालू और पशु-पक्षी सभी आ मिले और अंत में न्याय-पक्ष की विजय हुई। इसी न्याय का पक्ष लेने वाले राम की मूर्ति मेरे मन में बसती है।

मेरे मन के राम अलग और मेरे ढंग के हैं। उन्हीं ने सीता का निर्वासन नहीं किया था। केवल लोक की खुशी के लिए उसके स्थूल शरीर को कष्टों की बलि चढ़ा दिया था। भीतर-भीतर उनके पुट-जैसे पके हृदय को केवल भवभूति समझ सके थे—''अनिर्भिन्नो गंभीरत्वात अन्तर्गूढघनव्यथः। पुटपाकप्रतीकाशो, रामस्य करुणो रसः।।

भीतर से मन की दरारें छिपाते और ऊपर से लोक की खुशी के लिये राजकाज चलाते राम की व्यथा को मैं भी समझता हूँ। मैं उस समय राम को जरा भी क्रूर नहीं मानता, जब दूसरों के मनस्तोष के लिए अपने कोमल मन को

कठोर पत्थर से दबाकर अपने से अभिन्न प्राणप्रिया को परिपक्व गर्भ के साथ निर्वासन देते हैं। जबकि वह जानते हैं कि इसमें उनका वंश डूब जायेगा। उनका उत्तराधिकारी चक्रवर्ती निर्वासित हो रहा है। यह त्याग की भावना केवल राम में है। युगों ने इससे बहुत कुछ सीखा हैं, कम-से-कम अपने भारत ने स्वयं को भी दूसरों के सुख के लिए कष्ट देना सीखा है। मेरे मन के राम ने इसीलिए सीता को रावण के यहाँ इतने दिनों तक रहने पर भी नहीं त्यागा। उन्होंने भयानक युद्ध कर उसे फिर पाया और सप्रेम उसे स्वीकारा, लेकिन क्रूर समाज के संतोष के लिये उससे अग्निपरीक्षा भी दिलायी। पत्नी के चरित्र पर इतने विशाल हृदय (राम) को कोई संदेह न था। यदि होता तो वे उन्हें छुड़ाते ही क्यों उसे अनेकानेक राजकुमारियाँ वरण कर सकती थीं। धरती नारी-विहीन नहीं हो गयी थीं

मेरे राम ने शबरी के जूठे बेर जरूर खाये थे। उसे पराया नहीं कौशल्या-जैसी माँ मानकर। अर्से से बिछुड़ा मातृत्व जब सामने छलका तो ललकता वात्सत्य अपने-आप आ मिला। इस जगह बीच में जाति-पाँत का बंधन आ ही नहीं सकता। बंधन होता ही तो फिर राम स्वयं अपने हाथों बेर तोड़कर खा सकते थे। उल्टे शबरी को भी तोड़कर खिला सकते थे। उसके बूढ़पने का बहाना इसके लिए पर्याप्त था। किन्तु राम बहाना ढूँढ़ने वाले आज के कोई राजनेता नहीं थे और न ही वनवासियों का वोट उन्हें अपने कक्ष में टंच करना था। राम ने अपने जीवन में कथनी और करनी का फर्क नहीं रखा-''रामो द्विर्नाभिभाषते।' वा.रा.

मेरे राम न निर्गुण हैं न सगुण। वे गुण का घमंड रखने वालों के सामने बिल्कुल निर्गुण हैं। जब कोई उनसे गुणों का ग्रहण ही नहीं कर सकता, तो राम उसके लिये सर्वथा निर्गुण हैं और जो अपनी दृष्टि में अकिंचन हैं, अगुणी है, उनके लिये राम सगुन हैं, उनमें गुण-ही-गुण भरे हैं। इसीलिए मैं जब अपनी दृष्टि का पर्दा हटाती हूँ, तो मुझे प्रभु की मूर्ति गुणों-ही-गुणों से आप्लावित मिलती है-

''जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरत देखी तिन्ह तैसी।।''

ग्राम-तिघरा पं., पोस्ट-नगहरा
जिला-बस्ती

विद्या मित्रं प्रवासेषु, भार्या मित्रं गृहेषु च।
व्याधितस्यौषधं मित्रं, धर्मो मित्रं मृतस्य च।।

यात्रा के समय ज्ञान एक मित्र की तरह साथ देता है। घर में पत्नी एक मित्र की तरह साथ देती है, बीमारी में दवायें साथ निभाती हैं, अंत समय में धर्म सबसे बड़ा मित्र होता है।

रामायणकाल में स्त्री शिक्षा

जितेन्द्र कुमार शर्मा

रामायण काल में स्त्रियाँ पुरुषों की भाँति शिक्षा ग्रहण करती थीं। उस समय लड़कियाँ तपस्विनी, धर्मचर्या और कर्मकाण्ड में लीन रहती थीं।

अहिल्या भी महर्षि गौतम के आश्रम में एक धरोहर के रूप में रखी गई थी। उन्हें अनुशासित और प्रशिक्षित किए जाने के बाद उनके परिवार को सौंप दिया गया था। गौतम के तप बल तथा तपःसिद्धि से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उन्हें अहिल्या पत्नी के रूप में स्वीकार करने के लिए भेंट कर दी। वहाँ दूर-दूर से माता-पिता अपनी पुत्री को वर्षों तक आश्रम-वासिनी बनाकर रखते थे, और ऐसी कन्याओं का कभी-कभी उनके गुरुओं से विवाह भी कर दिया जाता था। रामायण काल में दक्षिण पूर्वी भारत की महिलायें आश्रमों में रहकर पुरुषों की ही तरह सर्वोच्च ज्ञान में दीक्षित हो सकती थी। उनके शिक्षा की ख्याति बाहरी जगत में दूर-दूर तक फैली हुई थी।

चौदह वर्ष के वनवास काल के आरम्भिक 12-13 वर्ष राम और सीता ने दण्डकारण्य के आश्रमों में व्यतीत किया। इस जीवनचर्या में सीता की शिक्षा-दीक्षा उनके असाधारण पति द्वारा उनके दीर्घ प्रवासनों द्वारा प्रभावित हुई। फिर भी पिता के सान्निध्य में सीता का बचपन शिक्षा दीक्षा से व्यर्थ नहीं गया होगा। उन्हें अवश्य ही पढ़ाया-लिखाया गया होगा। शिक्षित तो वह निश्चित रूप से थी ही। लंका में हनुमान द्वारा लाये गए अंगूठी में राम के नाम को पढ़कर वह पहचान गई थी। जब लंका विजय के बाद हनुमान सीता के राक्षसी पहरेदारनियों को मार डालने का प्रस्ताव करते हैं और सीता नीति कथा सुनाकर हनुमान को ऐसा करने से रोक देती है-

अयं व्याघ्रसमीपे तु पुराणो धर्मसंहितः।
क्षीण गीतः श्लोकोऽस्ति तं निर्दोषं प्लवङ्गम ॥

अपने माता-पिता के यहाँ सीता को धार्मिक शिक्षा पूरी तरह मिल चुकी थी। राम के साथ बातचीत में सीता व्यावहारिक ज्ञान तथा बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन कर चुकी थी। वन में राम ने सीता को देश-धर्म का पालन करने के लिए इन्द्र और तपस्वी का आख्यान बता दिया था, तथा लंका में हनुमान को राक्षसियों के वध से रोकने के लिए ब्राह्मण और रीछ को पौराणिक कथा सुनाई थी। ये सब उनकी पैतृक शिक्षा-दीक्षा की सूचक थी। विवाह से पूर्व माता से तथा बाद में सास से सीता को पत्नी कर्तव्य की शिक्षा मिल चुकी थी। इस वैवाहिक शिक्षा से सीता के स्त्रीत्व का शिक्षा और परिष्कार हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि विवाह के बाद सीता राजप्रासादों में एकान्तवासिनी नहीं थी अपितु अपनी सास की तरह ऋषि-मुनियों तथा शिक्षालयों के सम्पर्क में रहा करती थी। बारह वर्ष के आश्रम वास के बाद सीता चौतीस वर्ष की अवस्था तक पण्डिता बन चुकी थी। हनुमान के साथ बातचीत के क्रम में सीता ने स्त्रियों के गर्भाशय की शल्य चिकित्सा का सङ्गत किया है; जिससे हनुमान को एक सुशिक्षित महिला के रूप में सीता अवश्य प्रतीत हुई होगी। सीता स्वयं एक पण्डिता के अनुरूप भाषा का प्रयोग करती हुई कहती है-जिस प्रकार वेद विद्या आत्मज्ञानी स्नातक ब्राह्मण की सम्पत्ति होती है, उसी प्रकार मैं सिर्फ प्रियपति राम की धर्म पत्नी हूँ, जिस प्रकार ब्राह्मण शूद्र को मंत्रज्ञान नहीं दे सकता, वैसे ही मैं भी रावण को अपना अनुराग नहीं दे सकती-

अहमौपयिकी भार्या तस्यैव च परापतिः।
व्रतस्नातस्य विद्येव विप्रस्य विदितात्मनः
भावं न चास्याहमनुप्रदातुमलं द्विजो मन्त्रामिवाद्विजाया।

इतना ही नहीं सीता उच्च शिक्षा से भी काफी परिचित रही होगी तभी वह हनुमान द्वारा किए गए अपने पति की शिक्षा और उनके अंगों के शास्त्रीय वर्णन को ठीक तरह से समझ सकी थी। इससे प्रतीत होता है कि 35 वर्ष की अवस्था में सीता एक सामान्य छात्रा से ऊपर उठकर अपने समकालीन आचार्यों के विशिष्ट ज्ञान का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर चुकी थी। महारानी कौसल्या श्रीराम के राज्याभिषेक के अवसर पर अत्यन्त खुशी से रेशमी वस्त्र धारणकर ह्रदय से व्रत करती हुई ब्राह्मणों द्वारा अग्नि में आहुतियाँ दिला रही थी लेकिन उन्होंने राम के वन गमन का समाचार सुनकर प्यारे पुत्रों के लिए मंगलशासन किया था वह अद्भुत था-माता ने श्रीराम को आशीर्वाद देते हुए कहा-महर्षियों सहित आराध्य, विश्वेदेव, मरूदगण, धाता-विधाता, पूषा, भग, इन्द्र, अर्यमा, लोकपाल आदि सभी देवता तुम्हारा कल्याण करें। छहो ऋतुएँ, मास, संवत्सर, दिन, रात, मुहूर्त सभी तुम्हारा मङ्गल करें, श्रुति-स्मृति-धर्म आदि तुम्हारी रक्षा करे। इस तरह सभी तरह के मनोरथों को पूर्ण करने वाली विशल्यकरणी नामक शुभ औषध रक्षा के उद्देश्य से मन्त्र पढ़ते हुए उन्होंने राम के हाथों में बांध दिया, तथा मन्त्र का जाप भी किया—

औषधिं च सुसिद्धार्थां विशल्यकरणी शुभाम्।
चकार रक्षां कौसल्या मन्त्रौरभिजजाप च।।

इसी तरह आदि काव्य रामायण में बहुत सी स्त्रियाँ है, जिनके वैदुष्य का परिचय प्राप्त होता है। तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में महिलायें भी बढ़ चढ़कर शास्त्रार्थ, आदि धार्मिक क्रियाओं में पति के साथ भाग लेती थी, और मन्त्रों का शुद्ध-शुद्ध उच्चारण भी करती थी।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि रामायणकालीन शिक्षा का लक्ष्य और आदर्श शारीरिक शक्ति का पर्याप्त अर्जन करना था। प्राचीन आर्यो ने हमेशा से स्वस्थ तन का आग्रह किया है। हमें अपने शरीर की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, स्वास्थ्य और शक्ति के अभाव में कर्तव्यों का पालन नहीं हो सकता है—

लुप्यन्ते सर्व कार्याणि हीनदेहस्य वै प्रभोः।
देहस्यान्यस्य सद्भावे प्रसादं कर्तुमर्हसि।।

विद्यार्थी को ह्रष्ट पुष्ट और बलवान होकर अपनी तथा अपनी संस्कृति की रक्षा में सतत लीन रहना चाहिए। छात्रा को एक विषय या शास्त्र में पारङ्गत बनाने की अपेक्षा नानाविध शास्त्रों का व्यापक ज्ञान कराया जाय। बहुलता ही शिक्षित व्यक्ति की सच्ची कसौटी है। किसी शास्त्र विशेष में एकाकी प्रवीणता मात्रा नहीं, जीवन की एकद्देशीयता का नहीं। वरन् उसकी समग्रता का बोध कराने वाली शिक्षा ही सच्ची शिक्षा है। यह आदर्श राम की सर्वाङ्गपूर्ण शिक्षा में प्रतिबिम्बित हुआ है। रावण सहित उसके अन्य पुत्र और बान्धव भी शास्त्रविद्या के ज्ञाता, माया, विशारद, युद्ध निपुण तथा सर्वोच्च दर्शनशास्त्र के ज्ञाता थे। रावण अपने पुत्रों में बौद्धिक ज्ञान और सक्रिय वीरत्व के दोनों आदर्शों का संयोग देखना चाहता था। रावण के अनुसार—

इयं च राजधर्माणां क्षत्रियस्य मतिर्मता।
नाना शास्त्रेषु संग्रामे वैशारदमरिंदम।।

अर्थात् क्षत्रिय राजाओं का कर्तव्य है कि वे शिक्षा के विभिन्न अङ्गों तथा युद्ध की कला दोनों कला में समान रूप से जानकारी रखें। विद्वत्ता के साथ-साथ युद्ध में सफलता भी नितान्त आवश्यक है।

उपर्युक्त विवेचनानुसार स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य समाज को साक्षर ही नहीं सुसंस्कृत भी करना था। छात्रों को स्वच्छ तथा शिष्टाचार, विनम्रता और सुशीलता की भावनाओं से प्रेरित कर उसे एक सुयोग्य नागरिक बनाना उनका यथार्थ लक्ष्य था। सच्ची शिक्षा छात्रों को सभ्य, शिष्ट, संवेदनशील, दूसरों के दृष्टिकोण को समझनेवाला, हठधर्मी से दूर और तर्कसंगत बात को स्वीकार करने वाला बनाती है। इस प्रकार रामायण में वर्णित शिक्षा व्यवस्था का विवेचन संक्षिप्त रूप में किया गया है।

(शोधच्छात्र)
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान गंगानाथ
झाँ परिसर, प्रयागराज

भारतीय संस्कृति और स्वामी विवेकानन्द

विवेक कुमार शुक्ला

मानव जीवन के अनेक उद्देश्य हो सकते हैं मगर जिस उद्देश्य को सबसे प्रमुख स्थान प्रदान किया गया है, वह उद्देश्य है—परोपकार। परोपकार का प्रत्येक कार्य, सहानुभूति का प्रत्येक विचार, दूसरों की सहायतार्थ लिया गया प्रत्येक कर्म, प्रत्येक भला कार्य हमारे क्षुद्र अहंभाव को प्रतिक्षण घटाता रहता है। जिस पल मनुष्य यह समझ लेता है कि उसके जीवन का लक्ष्य 'मैं' नहीं 'तुम' है, उस पल वह 'मानव' से 'महामानव' बन जाता है। विवेकानंद भी ऐसे ही एक महामानव थे, जिन्होंने भारतीय दर्शन तथा संस्कृति का डंका देश में ही नहीं, सारे संसार में बजाया। जिन्होंने अध्यात्म का संबंध दैनिक जीवन के साथ जोड़ा और बताया कि मुक्ति सब कुछ त्याग देने में नहीं है, बल्कि कर्म, ज्ञान और भक्ति की आराधना करने में है। उन्होंने सेवा को सबसे बड़ा धर्म मानते हुए कहा—

''तुमने पढ़ा है, मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, लेकिन मैं कहता हूँ —दरिद्र देवो भव, मूर्ख देवो भव। गरीबों, अशिक्षितों और पीड़ितों को अपना ईश्वर मानो इनकी सेवा ही उच्चतम धर्म है। जहां तक करोड़ों व्यक्ति भुखमरी और अज्ञानता का जीवन व्यतीत करते हैं, मैं उस प्रत्येक देशवासी को देशद्रोही ठहराता हूँ, जो उन पर भार बनकर शिक्षित होते हैं और उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। दूसरों की थोड़ी—सी सेवा भी अन्तर-शक्ति को जागृत करती है यहाँ तक कि दूसरों की भलाई का तनिक चिंतन भी धीरे-धीरे हृदय में सिंह का—सा बल उत्पन्न कर देता है। प्रतिज्ञा करो कि तुम अपना संपूर्ण जीवन उन कोटि-कोटि व्यक्तियों का उद्धार करने में लगाओगे, जो दिन-प्रतिदिन नीचे गिरते जा रह हैं।''

स्वामी विवेकानंद जी ने भारत को व भारतत्व को कितना आत्मसात कर लिया था यह कविवर रविन्द्रनाथ टैगोर के इस कथन से समझा जा सकता है जिसमें उन्होंने कहा था कि - यदि आप भारत को समझना चाहते हैं तो स्वामी विवेकानंद को संपूर्णतः पढ़ लीजिये।'' नोबेल से सम्मानित फ्रांसीसी लेखक रोमां रोलां ने स्वामी जी के विषय में कहा था-''उनके द्वितीय होने की कल्पना करना भी असम्भव है वे जहाँ भी गये, सर्वप्रथम ही रहे, प्रत्येक व्यक्ति उनमें अपने मार्गदर्शक व आदर्श को साक्षात पाता था वे ईश्वर के साक्षात प्रतिनिधि थे व सबसे घुल-मिलकर रहना चाहते थे उनकी यही विशिष्टता थी, हिमांचल प्रदेश में एक बार एक अनजान यात्री उन्हें देख ठिठक कर रुक गया और आश्चर्यपूर्वक चिल्ला उठा—'शिव' यह ऐसा हुआ मानों उस व्यक्ति के आराध्य देव ने अपना नाम उनके माथे पर लिख दिया हो।'' ऐसे हमारे स्वामी विवेकानंद कलकत्ता के एक उच्च मध्यवर्गीय परिवार में 12 जनवरी, 1863 को जन्में विवेकानन्द के बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ था, विवेकानंद विश्वनाथ और भुवनेश्वरी के सबसे बड़े पुत्र थे। ज्ञान पिपासु और घोर जिज्ञासु नरेन्द्र का बाल्यकाल तो स्वाभाविक विद्याओं और ज्ञान अर्जन में व्यतीत हो रहा था किन्तु ज्ञान और सत्य के खोजी नरेन्द्र अपने बाल्यकाल में अज्ञानक जीवन के चरम सत्य की खोज के लिए छटपटा उठे और वे जानने के लिए व्याकुल हो उठे कि संसार को किसने बनाया है? क्या ईश्वर का अस्तित्व है और उससे साक्षात्कार हो सकता है? उनका मन पढ़ाई-लिखाई में कम लगता था, खेल-कूद के वे बहुत ही शौकीन थे। वे स्वतंत्र विचार के थे। बड़े-से बड़े आदमी की बात को भी वो सहज ही स्वीकार नहीं कर लेते थे। उसके विषय में स्वयं चिंतन करते थे और प्रत्यक्ष प्रमाण मिलने पर ही उस पर विचार करते थे।

नरेन्द्र का हृदय बड़ा कोमल था। दूसरों के दुःख-दर्द की गाथा सुनकर उनकी आँखों से आँसू बहने लगते थे। एक दिन वे किसी को वेद पढ़ा रहे थे कि बंगला भाषा के सुविख्यात नाटककार, गिरिशचंद्र घोष वहाँ आए और बोले, नरेन्द्र तुमने वेद-वेदांत बहुत पढ़े हैं। पर देश की जो दुरावस्था है, भूख और बुराइयाँ समाज को खा रही है, क्या इन्हें दूर करने का कोई उपाय वेद में मिलता है? यह सुनकर समाज की जड़ता और दुख-दारिद्रय को दूर करने के लिए

उनका चित्त व्याकुल हो उठा। वे उसका मार्ग खोजने लगे। इनकी यही खोज उन्हें दक्षिणेश्वर के संत श्री रामकृष्ण परमहंस तक ले गई और परमहंस ही वह सच्चे गुरू सिद्ध हुए जिनका सान्निध्य और आशीर्वाद पाकर नरेन्द्र की ज्ञान पिपासा शांत हुई अंत में उन्होंने समाज और राष्ट्र की सेवा का व्रत लेकर गृह-त्याग कर दिया। रामकृष्ण परमहंस ने उन्हें संन्यास की दीक्षा दी और उनका नाम बदलकर विवेकानंद कर दिया। इसके कुछ समय पश्चात् अपनी दैव शक्ति तथा अपार ज्ञान उन्हें सौंपकर वे 16 अगस्त, 1886 को परलोकवासी हो गए। अपने गुरू से आशीर्वाद पाकर नरेन्द्र की ज्ञान पिपासा शांत हुई और वे सम्पूर्ण विश्व के स्वामी विवेकानंद के रूप में स्वयं को प्रस्तुत कर पाए। स्वामी विवेकानंद एक ऐसे युगपुरुष थे जिनका रोम-रोम राष्ट्रभक्ति और भारतीयता से सराबोर थी। उनके सारे चिंतन का केन्द्र बिन्दु राष्ट्र और राष्ट्रवाद था। भारत के विकास और उत्थान के लिए अद्वितीय चिंतन और कर्म इस तेजस्वी संन्यासी ने किया। उन्होंने कभी राजनीतिक धारा में भाग नहीं लिया किन्तु उनके कर्म और चिंतन की प्रेरणा हजारों ऐसे कार्यकर्ता तैयार हुए जिन्होंने राष्ट्र रथ को आगे बढ़ाने के लिये अपना जीवन समर्पित कर दिया। इस युवा संन्यासी ने निजी मुक्ति को जीवन का लक्ष्य नहीं बनाया था बल्कि करोड़ों देशवासियों के उत्थान को ही अपना जीवन लक्ष्य बनाया।

ग्राम–चकचई, पो.–गौर, जनपद–बस्ती

जय गौ माता

दर्शनीय है कामधेनु जो, गौ, माता कहलाती हैं।
देती है अमृत तुल्य दूध, घर-घर में पूजी जाती है।

(1)

देवासुर के मंथन से ही, धेनु का आविर्भाव हुआ।
सबकी इच्छा पूरी करना ही, मां का स्वतः स्वभाव हुआ।
तीरथ रूप मुख स्थल में ही वेदों का उद्भाव हुआ।
सब देवी और देवों का गौ-गात्र में अचल प्रभाव हुआ।
कठिन समस्या गौ-सेवा से, सरलाति सरल हो जाती है।
देती है अमृत तुल्य दूध ....
दर्शनीय ....

(2)

गाय विश्व की माता है'', इस मंत्र को तंत्र बनाना है।
हर घर में हो गौ पालन यह संकल्प कराना है।
गो-विष्ठा गो-मूत्र-दुग्ध, निज जीवन में अपनाना है।
पशु-पक्षी, प्रकृति से जुड़कर भारत स्वस्थ बनाना है।
जयकार करो गौ-माता की, सुख-शांति की प्राप्ति होती है।
देती है अमृत तुल्य दूध-घर-घर में पूजी जाती है।
देती है अमृत तुल्य दूध ....
दर्शनीय ....

हरिश्चन्द्र दूबे
राजकीय पाण्डुलिपि पुस्तकालय
प्रयागराज

कोरोना वायरस से रक्षक सनातन धर्म

डॉ. अरुण कुमार त्रिपाठी

आज पूरा विश्व कोरोना वायरस से परेशान है। किसी को अभी तक इसका इलाज नहीं सूझ रहा है। लोग बचाव का उपाय ढूँढ़ रहे हैं। इससे बचने का मात्र एक ही रास्ता है-सावधानी। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि इससे बचने के लिए अपने जीवन शैली में परिवर्तन करना आवश्यक है। जीवन शैली में परिवर्तन उन्हीं को करना है जिन्होने पाश्चात्य जीवन शैली अपना लिया है। भारतीय जीवन शैली वालों को अपनी जीवन शैली का कठोरता से पालन करने से ही बचा जा सकता है। भारतीय जीवन शैली सनातन धर्म पर आधारित है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि सनातन धर्म का कड़ाई से पालन करने से कोरोना वायरस से बचा जा सकता है। सनातन धर्म वस्तुतः कोई धर्म न होकर मानव जीवन को जीवन जीने का तरीका बताता है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति एवं उच्चतर शिक्षा परिषद उत्तर प्रदेश के अध्यक्ष प्रो. गिरीश चन्द्र त्रिपाठी अपने वक्तत्यों में बार-बार कहते हैं कि सनातन धर्म मनुष्य की जीवन जीने की शैली है। सनातन धर्म के ऋषि सतत् इस खोज में लगे रहते थे कि किस प्रकार से मनुष्य के जीवन को अच्छा बनाया जाय। चूँकि पूरा समाज शास्त्र एवं विज्ञान का ज्ञान नहीं रखता था इसलिए उन आदतों को धर्म का नाम देकर लोगों में अच्छी आदतों का विकास करते थे। इन नियमों का व्यक्ति धर्म के नाम पर पालन करता था तथा सामाजिक एवं स्वच्छता सम्बन्धी समस्याओं से उसका बचाव हो जाता था। व्यक्ति वैक्टीरिया, कीटाणु जीवाणु से बचत करता था तथा देवी-देवता के रूप में औषधियों का प्रयोग करके रोगों से दूर रहता था।

सनातन धर्म में साफ-सफाई का अत्यधिक महत्त्व है, लोग साफ-सफाई का अत्यधिक महत्व देते हैं। इसके अनुसार सुबह घर की सफाई करने से लक्ष्मी आती हैं। भोजन बनाने से पहले स्नान करना एवं साफ वस्त्र धारण करना धर्म है। भोजन से पहले हाथ धुलना, भोजन कपड़े उतारकर करना, शौच जाने के पश्चात् स्नान करके वस्त्र बदलना, दूर से हाथ जोड़कर प्रणाम करना धर्म है।

सनातन धर्म प्रकृति एवं पर्यावरण की रक्षा पर भी विशेष ध्यान देती है। सूर्य, पृथ्वी, अग्नि, वरुण (जल), वृक्ष, इत्यादि जो प्राकृतिक ऊर्जा के स्रोत हैं, ये सभी सनातन धर्म के देवता हों। सूर्य से बड़ा देवता कौन हो सकता है जिसकी प्रकाश से अपना भोजन बनाकर, वृक्ष मनुष्यों के लिए भोजन ही नहीं अपितु प्राणवायु के लिए आक्सीजन भी प्रदान करता है। दूसरी पृथ्वी से बड़ा देवता मनुष्य के लिए कौन है, जिसकी अक्षम निधियाँ हमें सदियों से अखंड जीवनी शक्ति दे रही हैं। सनातन धर्म में औषधीय वृक्षों को धर्म की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना गया है। यज्ञ में किन वृक्षों की समिधा की आहुति दी जाएगी, उनका क्या फल होगा, पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसका विस्तृत वर्णन श्रौतसूत्रों एवं गृहण सूत्रों में प्राप्त होता है। पर्यावरण की रक्षा एवं औषधीय महत्व को देखते हुए वृक्षों को देवता का रूप दे दिया गया है। गूलर को ब्रह्मा का प्रतीक,पीपल विष्णु का और बरगद शिव का स्वरूप बताया गया है। सनातन धर्म में वृक्ष पूजा का विधान इसलिए किया गया था, जिससे वृक्षों का जीवन हमारी जीवन की धड़कनों के साथ जुड़ जाये' तुलसी की पूजा प्रतिदिन किए जाने का विधान है तथा इसका स्थान घर के आँगन में है। इसका कारण है कि तुलसी के पत्ते में अनेक विसंक्रामक गुण हैं तथा यह आक्सीजन का भी अच्छा उत्पादक है। इसलिए तुलसी को विष्णु प्रिया कहा गया है। अनेक औषधीय गुण वाले बेल को शिव प्रिय बताया गया है। कीटनाशक एवं अनेक औषधीय गुण वाले नीम के पूजा शीतलाष्टमी को तथा विटामिन सी की प्रचुरमात्रा से युक्त आँवले की पूजा कार्तिक शुक्ल नवमी

को की जाती है। आँवला में भी अनेक औषधीय गुण पाये जाते हैं और यह मनुष्य में रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करता है। विष्णुपुराण में वृक्ष की महत्ता बताते हुए कहा गया है कि एक वृक्ष दस पुत्रों के समान हैं—

दशकूपसमा वापी दशवापीसमो ह्रदः।
दशह्रदसमः पुत्रः दशपुत्र समो द्रुमः।।

कोरोना वायरस से बचने के लिए अब विश्व समुदाय भारतीय सनातन संस्कृति को अपना रहा है। कोरोना वायरस सबसे अधिक हाथ मिलाने से फैलता है। हाथ मिलाना पाश्चात्य संस्कृतियों जैसे इश्लाम तथा क्रिस्चियन धर्मों में अभिवादन के लिए प्रयुक्त हो रहा है। आज हम उनका अन्धानुकरण करके स्पर्श द्वारा संवाहक रोगों को बढ़ावा दे रहे हैं। विश्व समुदाय के सभी धर्म हाथ मिलाने के साथ अब भारतीय सनातन संस्कृति में प्रयुक्त हाथ जोड़कर प्रणाम करने की विधा कोरोना वायरस से बचने के लिए अपना रही है। अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रम्प भी कहते हैं कि वे हाथ जोड़कर प्रणाम करना भारत से सीख लिए हैं, अब कोरोना वायरस से बचने के लिए इसका ही प्रयोग करेंगे। सनातन धर्म में एक अवसर पर हस्थ मेलापनम (पाणिग्रहण संस्कार) किया जाता है। वह विवाह के अवसर पर कन्या और वर का हाथ मिलाया जाता है। परन्तु इस संस्कार के पूर्व कन्या और वर के हाथों को हल्दी का लेप लगाकर विसंक्रमित किया जाता है। इतना ही नहीं विवाह के पूर्व कन्या एवं वर के सम्पूर्ण शरीर पर हल्दी का लेप लगाकर विसंक्रमित किया जाता है। इसके अतिरिक्त सनातन धर्म में हाथ-मिलाने का कोई भी अवसर नहीं आता है। भारतीय सनातन धर्म वृक्षों के समान ही पशुओं का भी आदर करता है। गाय को तो वह माता के तुल्य पूज्यनीय मानता है। गाय के दूध को वैज्ञानिकों ने भी औषधि के रूप में सिद्ध ही कर दिया है। आज कोरोना वायरस पशुओं के मांस खाने वालों में अधिक फैल रहा है। पाश्चात्य संस्कृति के लोग आज सनातन धर्म का अनजाने में अनुकरण करते हुए मांस भक्षण पर रोक लगाकर शाकाहारी हो गये हैं। सनातन धर्म पशु दया के साथ ही साथ सभी तरह की हिंसा पर रोक लगाता है। तथा पशुओं-वृक्षों की पूजा एवं रक्षा धर्म समझता है। आज पाश्चात्य संस्कृति का नकल करते हुए कुछ भारतीय भी मांस भक्षण करने लगे हैं। उन्हें अपनी संस्कृति अपना कर अच्छी आदत का विकास करना चाहिये। विदेशों में मुखचुम्बन करके अभिवादन किया जाता है। इससे कोरोना वायरस का फैलाव तेजी से हो रहा है। परन्तु भारतीय सनातन धर्म में मुखचुम्बन का कोई विधान नहीं है। इसे अपसंस्कृति माना जाता है। इसलिए भारत में चुम्बन के द्वारा अभिवादन करने वाले को शिकायत पर सजा भी हो सकती है।

सनातन धर्म अपने पूजा पाठ तथा हवन आदि क्रियाओं के द्वारा वातावरण को शुद्ध करके किटाणु मुक्त करता है। इसे धर्म से जोड़कर लोगों के दिनचर्या में सम्मिलित किया गया है। आरती में प्रयुक्त कपूर, दीप, से तथा हवन में प्रयुक्त धूप एवं औषधीय समिधा से जहाँ एक तरफ वातावरण से शुद्ध होकर वायरस विहीन होता है वहीं दूसरी तरफ इससे अनेक तरह के रोगों का उपचार भी हो जाता है। इस प्रकार से पूजा में प्रयुक्त तुलसी, कपूर, धूप लोहबान लौंग आदि वातावरण के लिए सोनेटाइजर का काम करते हैं। इस प्रकार से सनातन धर्म को अपने आदत में डालने पर जहाँ एक तरफ नवीन रोग को पैदा होने में रोक लग जायेगी वहीं दूसरी तरफ रोगों के फैलने में भी रोकथाम होगा। इसलिए विश्व समुदाय के लिए यह आवश्यक हो गया है कि सनातन धर्म को अपनाकर मानव समुदाय को कोरोना जैसी बीमारियों से बचायें एवं स्वयं बचें।

48/18 H.I.G., योजना-2, झूँसी, प्रयागराज
मो. 9918456889